RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 57 अंक : 01 प्रकाशन तिथि : 25 दिसम्बर कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 जनवरी, 2020

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

जन्म दिवस
25 जनवरी, 1924

निर्वाण दिवस
7 दिसम्बर, 1979

अभिनव तप से यहां जगत के भाग्य लिखे जाते हैं
यहाँ प्रेम में मुद मँगल हो, नारायण सोते हैं
नारायण सोते है।
अब जागो शिव उतरी कब से है यहाँ गंग की धारा,
मन थकता नहीं हमारा।।

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 जनवरी, 2020

वर्ष : 57 अंक-01

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ नव वर्ष सन्देश-2019	✍	04
❍ समाचार संक्षेप	✍	06
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	07
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	09
❍ मेरी साधना	✍ प्रो. रूपसिंह लिम्बड़ी	13
❍ बलिदान की होड़	✍ गोपालसिंह राठौड़	18
❍ जीवन्मुक्ति की प्राप्ति	✍ स्वामी यतीश्वरानन्द	20
❍ हैप्पी मैन बनिए एंग्रीमैन नहीं	✍ मुनिश्री चन्द्रप्रभ	23
❍ विचार-सरिता (एकपञ्चाशत् लहरी)	✍ श्री विचारक	27
❍ समूह में जीने की कला	✍ श्री भँवरसिंह रेड़ी	28
❍ आलोचनाओं का महत्त्व	✍ श्री दीपसिंह बिजेरी	31
❍ अपनी बात	✍	32

श्री क्षत्रिय युवक संघ
नव वर्ष सन्देश-2019

मेरे प्रिय आत्मीय जन!

जय संघशक्ति!

संघ की स्थापना 22 दिसम्बर, 1946 को भारतवर्ष पर अंग्रेजी हुकूमत के समय हुई। गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ डालने के लिये सौ वर्ष तक प्रयत्न होता रहा। अनेकों युवकों का बलिदान हुआ। अनेक माताओं ने अपने पुत्रों को खोया, अनेकों बहनों ने अपने भाई खोये, युवा पत्नियों ने अपने पति खोए। इतनी महंगी आजादी मिली। राष्ट्र ने स्वराज तो प्राप्त कर लिया, सुराज स्थापित करना राष्ट्र की आवश्यकता रही। सुराज की पीड़ा ही श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक 22 वर्षीय युवक श्री पूज्य तनसिंहजी की पीड़ा बनी। और वह पीड़ा ही संघ की स्थापना का कारण बनी।

देश तो बिखरा हुआ था और क्षत्रिय समाज न केवल बिखरा हुआ था अपितु अपने जीवन के लक्ष्य और मार्ग को भूल चुका था। क्षत्रियों ने प्राचीन काल में भारतवर्ष को सुशासन दिया। देश और धर्म पर आने वाले संकट को अपने ऊपर लेना उनका प्रिय व उपास्य विषय रहा। बदलते युग में धीरे-धीरे क्षत्रिय अपने लक्ष्य व धर्म के मार्ग से च्युत हो गए। देश की आजादी तक गुलामी के कारण देश और क्षत्रिय समाज का आचरण मानवीय मूल्यों से दूर हो गया। क्षत्रिय अपने अहंकार, अपनी जातीय श्रेष्ठता का अभिमान, स्वार्थ, लोभ, ईर्ष्या से रोगग्रस्त हो चुका था।

संघ ने क्षत्रियों को अपने श्रेष्ठ आचरण की ओर अग्रसर कराया। क्षत्रिय समाज में भी समाज सुधार के लिये कतिपय अन्य संस्थाएँ बनने लगी। किन्तु व्यक्ति निर्माण के बिना न तो राष्ट्र निर्माण सम्भव होता है न समाज निर्माण ही। इस सत्य को गौण मान केवल समाज सुधार का प्रयत्न होने लगा। उन संस्थाओं की भावना पर कोई संदेह नहीं। संघ ने व्यक्ति के निर्माण के लिये युवकों को चरित्रवान व संस्कारित बनाने के संकल्प के साथ अभ्यास प्रारम्भ किया। निरंतर और नियमित अभ्यास के बिना न चरित्र निर्माण सम्भव और न संस्कार निर्माण। सुसुप्त समाज में जड़ता ने घर कर लिया था। विष और अमृत का संघर्ष आदिकाल से चला आ रहा है जो अब भी जारी है और संघ स्थापना के तुरन्त बाद से ही असहमतियाँ होने लगी- टूटन होने लगी। आज तक यह चल रही है। संघ न तो थका और न रुका, सतत् कर्म में लगा रहा तो समाज में जड़ता दूर हुई, जागृति होने लगी। संघ का संदेश दूर-दूर तक प्रसारित होने लगा। मरुधरा में संघ का कमल खिला फिर गुजरात में खिला, फिर देश के सुदूर प्रदेशों में पहुँचा। बालिकाओं और महिलाओं में स्वतंत्र रूप से अभ्यास चलने लगा। आज देश के अतिरिक्त विदेशों तक संदेश पहुँचने लगा है, वहाँ जागृति हो चली। विरोध बाहर और भीतर आज भी चल रहा है जिसका कोई गिला नहीं। समाज के कर्मशील युवक युवतियाँ संघ से जुड़ना चाहते हैं, ऐसे में जिन युवक-युवतियों ने अपने आपका निर्माण किया है, संस्कारित हुए हैं वे ही इस काम का विस्तार कर पाये हैं। हमारी क्षमताओं से अधिक कार्य विस्तार की माँग बढने लगी है। जो लोग अछूते रह गए वो भी आ आकर मिल रहे हैं। लगता है पूरा समाज उठ खड़ा हो गया है। अब इन्हीं जागृत और चल पड़ने को कटिबद्ध युवक-युवतियों के कंधों पर पूरे राष्ट्र का उत्तरदायित्व भी आने वाला है।

उधर पूरे देश में सदाचरण का इतना अभाव हो गया है कि अत्याचार, दुराचार, बलात्कार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है। भारत सरकार व राज्य की सरकारों से देश सम्भल नहीं रहा है। क्योंकि शासन करने वाले ही भ्रष्ट और आचरणहीन हो जाएँ तो समाज को कौन सम्भाले? धर्म की परिभाषा बदल गई तो उसकी पुनर्स्थापना और रक्षा कौन करे? धर्महीन देश को पतित होने से कौन बचाए? विकास की परिभाषा बदल गयी तो विकास होगा कैसे?

विश्वगुरु भारतवर्ष आज सब कुछ भूल गया है और अन्यान्य देशों की ओर आकृष्ट होकर विनाशकारी होड़ में लग गया है। कौन मित्र है कौन शत्रु, इसकी पहचान खो गयी है। अपने गुरुत्व को भूल हीनग्रन्थी से ग्रस्त होकर निरर्थक चेष्टाएँ कर रहा है। ऐसे में इस देश को सुशासन देने वाले क्षत्रियों को ही यह कार्य अपने कंधों पर लेना होगा। हनुमान की भाँति अपनी शक्ति पर विश्वास और श्रद्धा करनी होगी। हम सक्षम हैं, हममें संपूर्ण संभावनाएँ हैं यह स्मरण रखना होगा। मानवता त्रस्त होकर कराह रही है, करुण क्रन्दन कर रही है। हमें उद्घोष करना होगा कि हे भारत माता! तुम्हारी आँखों में आँसुओं की धार नहीं मुस्कराहट भरने वाले तुम्हारे उत्साही सपूत बस आ ही रहे हैं। थोड़ी देर तो हो गयी। परन्तु देश, समाज और मानवता के बुरे दिनों का अन्त आने वाला है, नवप्रभात होने वाला है। भगवान का गीतोक्त संदेश– ***''हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चय।''*** का स्मरण कर लाभ हानि की चिन्ता छोड़ कर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में उतरकर पूर्वजों की भाँति बनना ही होगा। मेरे प्रिय बन्धुओ और भगिनियो! इस विश्वास के साथ हम संघ के नववर्ष का स्वागत कर इस धरती पर स्वर्ग उतार लाने के लिये कटिबद्ध हो जाएँ। एकमात्र ईश्वर के अतिरिक्त किसी के समक्ष झुकेंगे नहीं और पूरे विश्व में सुख और शान्ति का बिगुल बजा देना है।

बस यही। जय संघशक्ति!

आपका :
भगवानसिंह
संघप्रमुख

आदर्श स्वयंसेवक की राह

1. मेरा शिक्षक मुझे सम्बोधन कर जो काम कहे, उसे मैं ***तत्काल मनोयोग*** से पूर्ण करूंगा।
2. मेरा शिक्षक किसी काम के लिये कहे, पर किसी का नाम न ले तो उसे मैं ***अपने लिये ही आज्ञा मानकर*** तत्काल मनोयोग से पूर्ण करूंगा।
3. मेरा शिक्षक यदि किसी अन्य स्वयंसेवक का नाम लेकर किसी काम के लिये कहे तो मैं भी उस स्वयंसेवक से पहले या उसके साथ ही उठने की चेष्टा करूंगा और शिक्षक को यह अवसर दूंगा कि वह चाहे तो ***मुझे भी*** इस काम के लिये विकल्प के रूप में मान ले।
4. मैं हर प्रकार से मेरे शिक्षक के समीप्य का लाभ उठाऊँगा-पार्थिव, मानसिक, बौद्धिक सामीप्य। नौ प्रकार की भक्ति में से सात प्रकार की भक्ति केवल पार्थिक सामीप्य से ही संभव है। श्रवण, सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन। शेष दो प्रकार की भक्ति कीर्तन और स्मरण मानसिक या बौद्धिक सामीप्य से संभव है।
5. मैं यह जानने का प्रयास करूंगा कि मेरे शिक्षक की क्या इच्छा है और जानते ही बिना आज्ञा पाये ही उस काम को करना शुरू कर दूंगा, जिसके लिये मेरा अनुमान है कि वह आज्ञा देने ही वाला है।
6. मेरे शिक्षक की दृष्टि मुझ पर पड़ जाए तो उसे मैं अपना भाग्य समझूंगा। वह मुझ से विनोद भी करे तो मैं स्वयं अपनी ही मजाक उड़ाऊँगा। वह मुझे आज्ञा दे तो अन्य सभी आज्ञाओं को मैं दूसरे नम्बर पर डाल दूंगा।
7. मैं केवल उसी बात को जानने की चेष्टा करूंगा जो मुझे बताया या सिखाया जा रहा है।
8. मेरे शिक्षक के विषय में मेरी कोई भी धारणा पैदा होगी तो, वह धारणा बढे उससे पहले मैं उससे कह दूँगा।

समाचार संक्षेप

संस्थापक की पुण्यतिथि :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक पू. तनसिंहजी की 40वीं पुण्यतिथि 7 दिसम्बर को संघ-क्षेत्र में स्थान-स्थान पर मनाई गई। संघशक्ति प्रांगण में सायंकाल आयोजित कार्यक्रम में उपस्थित स्वयंसेवकों ने पूज्यश्री के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित की। संघप्रमुखश्री के सान्निध्य में भजन-संध्या का कार्यक्रम रखा गया। बाड़मेर के राजपूत मुक्तिधाम में स्थित पू. तनसिंहजी के स्मारक पर बाड़मेर शहर व गुड़ामालानी प्रांत की शाखाओं के स्वयंसेवकों ने श्रद्धांजलि स्वरूप पुष्पांजलि अर्पित की।

जोधपुर शहर में स्थित संघ कार्यालय 'तनायन' शाखा, हनुवंत राजपूत छात्रावास, साप्ताहिक महिलाशाखा, पंचवटी छात्रावास, चौपासनी, तनायन सायंकालीन, जयभारती नगर; शेरगढ़ की जेठानिया शाखा; बालोतरा प्रांत में टापरा स्थित नागणेची मंदिर, विवेकानन्द आदर्श उ.मा.वि. व वीर दुर्गादास राजपूत छात्रावास में, राव बल्लूजी राजपूत छात्रावास सांचोर, सरोज बाल निकेतन कुंडल, पपूरना, आयुवान निकेतन कुचामनसिटी, अमर राजपूत छात्रावास नागौर, छापड़ा, बामणु, भिंयाड़, जसवंतपुरा, दईपड़ा खींचियान, कल्याणपुर, करणी राजपूत छात्रावास नोखा, श्री डूंगरगढ़, पुन्दलसर, झंझेऊ, विजय भवनशाखा, नारायण निकेतन बीकानेर, सोनू, सेऊवा, श्री कल्लारायमलोत राजूपत छात्रावास सिवाना, उदयपुर में राणा शाखा, बी.एन. कैम्पस, ओसवाल नगर, गुजरात में वलादर, करबूण, दियोदर, सूरत में सारोली स्थित वीर अभिमन्यु पार्क; मुंबई में तणेराज शाखा, नारायण शाखा भाईन्दर, वीर दुर्गादास शाखा मलाड़ व पृथ्वीराजसिंघोत शाखा में पुण्यतिथि मनाई गई।

कार्यक्रम में कई स्थानों पर पू. तनसिंहजी पर पू. नारायणसिंहजी रेड़ा लिखित 'माँ के मुख से' का पठन किया गया। कुछ स्थानों पर पू. तनसिंहजी रचित 'गीता और समाज सेवा' का पठन किया गया। कुचामनसिटी स्थित साधना संगम संस्थान में प्रात: 4 बजे से रात्रि 8 बजे तक यथार्थ गीता का अखण्ड पाठ श्री अरविन्दजी स्वामी व साथियों द्वारा किया गया। अगले दिन कुचामन में शोभायात्रा भी निकाली गई। कार्यक्रम में पू. तनसिंहजी का जीवन परिचय भी दिया गया।

शताब्दी वर्ष :

पू. आयुवानसिंहजी के जन्मशताब्दी वर्ष में समय-समय पर विभिन्न स्थानों पर कार्यक्रम आयोजित किए जाते रहे हैं। उत्तरप्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में विगत वर्षों से संघ कार्य प्रारम्भ हुआ है। उसी शृंखला में महोबा, बांदा, फतेहपुर और कानपुर में जनसम्पर्क के दौरान जगह-जगह पू. आयुवानसिंहजी के व्यक्तित्व व कृतित्व पर जानकारी दी गई। महोबा, करबई, फतेहपुर, घाटमपुर, कानपुर में कार्यक्रम आयोजित हुए।

अजमेर में आयोजित कार्यक्रम में तेजसिंह आंतरोली, एडवोकेट देवेन्द्रसिंह, श्री प्रहलादसिंह पीह ने पू. आयुवान A

सिंहजी का जीवन परिचय, उनके साहित्य और उनके कार्यों की जानकारी दी।

मुंबई में महाराव शेखाजी शाखा अंधेरी में आयोजित कार्यक्रम में संभाग प्रमुख ने पू. आयुवानसिंहजी के प्रेरणादायी जीवन पर चर्चा की।

अतिथि आगमन :

बस्तर (छत्तीसगढ़) के राज परिवार के वंशज श्री कमलचन्द्र भंजदेव संघशक्ति भवन में संघप्रमुखश्री से मिलने आए। आप जब लंदन में अध्ययनरत थे, तब महाराजा साहब जोधपुर से संघ के बारे में सुना था। तब से ही नेट व अन्य साधनों से संघ सम्बन्धी जानकारी लिया करते थे। क्षत्रियों में कहीं क्षत्रियोचित जीवन बनाने का कार्य हो रहा है, यह आपके आकर्षण का कारण था। लगभग सवा घंटे तक संघ, समाज सम्बन्धी बातें हुई। बस्तर व छत्तीसगढ़ की जानकारियाँ दी। संघप्रमुखश्री को अपने वहाँ आने का आग्रहपूर्ण निमंत्रण दिया।

कायमखानी समाज से चर्चा :

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही हमारे समाज के विरुद्ध षड्यंत्र पूर्वक अभियान चलता रहा है ताकि हमारे साथ रहने वाले वर्गों को हमसे दूर किया जा सके। इस दुष्प्रचार के प्रभाव को धीरे-धीरे कम किया जाए, यह आवश्यक समझा गया। इसी संदर्भ में इस वर्ष फरवरी माह में दलित समाज के प्रतिनिधियों से संघशक्ति प्रांगण में संवाद रखा गया था ताकि भ्रम-निवारण प्रक्रिया चले और निकटता बढे। इसी शृंखला में 15 दिसम्बर को कायमखानी समाज के प्रतिनिधियों का कार्यक्रम रखा गया। संवाद हुआ, भविष्य में ऐसे कार्यक्रम आयोजित किए जाते रहें, यह भी निश्चय किया।

❐

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च प्रशिक्षण शिविर गनोड़ा (बांसवाड़ा) में 21 मई, 2019 माननीय संघप्रमुखश्री भगवानसिंहजी द्वारा उद्बोधित प्रभात संदेश }

श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना का उद्देश्य इस संसार को, मानव जाति को, प्राणीमात्र को कष्टों से बचाना, तनाव से मुक्त करना, उनको स्वस्थ रखना, उनको स्वच्छ बनाना है। ऐसा एक प्रबल शासक के बिना संभव नहीं है। हमारे पूर्वजों ने जो इतिहास बनाया है वह इसी उद्देश्य की पालना से ही बनाया है। वही श्री क्षत्रिय युवक संघ का उद्देश्य है जो आपको यहाँ शिविर में बताया जा रहा है।

वर्णों की व्यवस्था थी कि किस स्वभाव के लोग क्या-क्या कार्य करेंगे। क्षत्रियोचित स्वभाव के लोगों को प्राणीमात्र की रक्षा का दायित्व मिला। यह मानव शरीर है, इसी तरह समाज का एक शरीर है और राष्ट्र का एक शरीर है। पूरे विश्वात्मा का एक शरीर है। ऐसी कल्पना करके कि यह सब मेरे ही द्वारा संचालित, पालित और नियंत्रित हो रहा है, क्षत्रिय अपना दायित्व निभाता था। इतना विशाल दृष्टिकोण क्षत्रिय का होना चाहिए।

उस समय के युद्ध इसी दायित्व को लेकर हुआ करते थे किसी भी व्यक्ति को किसी भी प्रकार का कष्ट है तो कष्ट पहुँचाने वाले को दण्ड दिया जाए। ऐसी क्षमता क्षत्रिय में होनी चाहिए। आदिकाल से यह प्रचलित है कि हिंसा नहीं करनी चाहिए। क्षत्रिय के लिये यह बात भिन्न प्रकार से लागू होती है। उदण्डी को आवश्यकता अनुसार दण्ड देने के लिये हिंसा भी करनी पड़े तो की जाए। यदि ऐसी हिंसा क्षत्रिय डरकर नहीं करता है तो वह पाप का भागी बनता है। परन्तु इस बात को बड़ी सावधानी से समझने की आवश्यकता है। यहाँ हिंसा को रोकने के लिये हिंसा की जा रही है। लोग इतने हिंसक हो जाते हैं, इतने आक्रामक हो जाते हैं कि दोष करते हैं, नैतिक मूल्यों का हरण कर लेते हैं। तब क्षत्रिय का यह दायित्व बनता है कि बिना किसी भय के, बिना किसी दया के ऐसे लोगों को सजा दी जाए। इसलिए जो निर्बल हो, वह शासन करने के योग्य नहीं है। सबल शासक ही शासन का दायित्व भली प्रकार निभा सकता है।

आज प्रजातंत्र में व्याख्याएँ बदल गई हैं। जिसको अधिक लोग पसंद करते हैं वह शासक होता है। लेकिन जिसका इतना विशाल दृष्टिकोण नहीं होता वह सुशासन दे नहीं सकता। क्षत्रिय के घर में जन्म लिया है तो इस बात को ध्यान में रखें कि हमारा अन्तिम लक्ष्य प्रबल बनकर उस मंजिल तक पहुँचना है। जब तक ऐसा प्रबल बनकर क्षत्रिय शासन को हाथ में नहीं लेंगे, तब तक इस संसार का कल्याण नहीं कर सकते। तब तक क्षत्रिय वर्ण अपने उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर पायेगा। इसलिए सारी तैयारी यही है कि हमको वहाँ तक जाना है।

हम शाखाओं में आते हैं, शिविर में आते हैं, यहाँ की बातें सुनते हैं मात्र इसी से यात्रा प्रारम्भ नहीं होती है। क्योंकि बलवान व्यक्ति ही, शक्तिमान व्यक्ति ही शासन करने योग्य होता है, तो बलवान बनना आवश्यक है। शरीर से बलवान हो, मन से बलवान हो, बुद्धि से बलवान हो, आत्मा से बलवान हो। आत्मा तो बलवान ही होती है। आत्मा पर शक्तिहीनता का जो आवरण छाया हुआ है तो बलवान नहीं बना जा सकता। ऐसी स्थिति में हमारी यात्रा अभी प्रारम्भिक स्तर पर ही चल रही है। युग की माँग है कि क्षत्रिय आगे आएँ। लेकिन युग यह भी देख रहा है कि क्षत्रिय अपने आप में ही मस्त बने हुए हैं। कब तक तैयारी करते रहेंगे। हिंसा तो हो रही है, लोगों को तकलीफ तो हो रही है, त्राहि-त्राहि मची हुई है। त्रस्त प्राणी करुण क्रन्दन कर रहे हैं। वह करुण-क्रन्दन हमको सुनाई पड़ता हो, तो भी हम कुछ नहीं कर सकते क्योंकि हम बलवान नहीं हैं।

शक्ति, शौर्य जो पास नहीं है तो विजय कहाँ है जयकारों में। यहाँ क्षात्रधर्म की जय बोलते हैं, उसका हेतु

दूसरा है। खेलों में विजय होती है वह हमारी नहीं, कहीं अहंकार न पनपे इसलिए बोलते हैं क्षात्रधर्म की जय। लेकिन मात्र बोलने से संसार में जय नहीं होती। शक्ति और शौर्य पनपा कर अपने आपको जीता जाता है। इसी से देश को जीता जाता है और इसी से संसार को जीता जाता है। जीतने का अर्थ किसी को डराना नहीं, किसी का शोषण करना नहीं, किसी का अपहरण करना नहीं। लेकिन दिलों पर राज करना है, मन पर राज करना है। बुद्धि पर राज करना है। ऐसे शासकों की इस देश में ही नहीं सारे संसार में आवश्यकता है। संघ में उसी की तैयारी है। उसी अभ्यास को हम यहाँ शिविर में कर रहे हैं।

यह सोच बड़ी व्यापक है। इस व्यापकता को सोचें तो हमारा जीवन तो बहुत छोटा है। किसी को 50 वर्ष का जीवन मिला है। क्या इतनी शक्ति संचय का कार्य इतने छोटे समय में जो जाएगा? परन्तु इस जीवन में हमने जो कुछ कर लिया वह हमारा मूल धन है। यह कार्य करते-करते शरीर छूट जाता है तो हमारा किया हुआ काम हमारे लिए व्यर्थ नहीं जाता। हमारे दर्शन के अनुसार इस जीवन में जितना किया है, अगले जन्म में हमारी आगे की यात्रा यहीं से प्रारम्भ होगी। हमारा जीवन केवल यह जन्म ही नहीं है। हमारे अनेक जीवनों की श्रृंखला में यह जीवन है, इसमें जितना कर लिया, आगे यहीं से यात्रा प्रारम्भ होगी। अनेक शिविरों में हम आते हैं, लेकिन इस शिविर में जो कि हमारे शिविर करने की श्रृंखला की एक कड़ी है, हमें क्या प्राप्त करना है बलवान बनने के लिये। बलवान बनने का उपक्रम जो हम कर रहे हैं, इस शिविर की उपलब्धि उसी में जुड़ेगी। लक्ष्य बड़ा विशाल है, यह बात जब तक समझ में नहीं आती है तब तक हम संकुचित विचार के हैं। अन्य लोग भी ऐसा ही समझते हैं कि संघ वाले जाति की बात करते हैं, इनमें राष्ट्र प्रेम की कोई भावना ही नहीं, मानवता की कोई बात ही नहीं है। जबकि क्षत्रिय का जीवन तो अपना है ही नहीं, वह तो मानवता के लिये ही है। वह प्राणीमात्र के लिये ही है।

उन सबका कल्याण हो, इससे पहले आवश्यकता है कि हम वैसे बलवान बनें जो ऐसा कर सकता हो और इसी में हमारा कल्याण है। हम संसार की रक्षा करें, लोगों के कष्टों को सुनें और दूर करें वह तभी कर पाएंगे जब हम सक्षम हों। यह जो सारी प्रक्रिया हमसे यहाँ करवाई जा रही है, उसका हेतु इतना विशाल है। अपने आपको भी ओछा नहीं समझें। लोग कहते हैं कि राजूपत तो बाहर से आए हुए हैं। हम उनकी बात पर विश्वास कर लेते हैं क्योंकि हमारा अध्ययन नहीं है। हमारी जानकारी नहीं है। यह जानकारी कोई विद्यालय नहीं कराता। यह जानकारी क्षत्रिय युवक संघ कराता है। इसीलिए यह शिक्षण हमारे लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

शिक्षण छोटी-छोटी बातों से प्रारम्भ होता है। बड़े कामों का बीज छोटा ही होता है। बीज छोटा-सा दिखता है पर वह अपने आप में एक वट वृक्ष को छुपाए रहता है। बहुत समय लगता है उसे वट वृक्ष बनने में पर बाद में अनेक लोग उसकी छाया में बैठते हैं। सैंकड़ों-हजारों पक्षियों का वह घर बनता है। हमको बलवान बनकर ऐसा वट वृक्ष बनना है जिसकी छाया में संसार सुखी रह सके। तभी संपूर्ण समाज, संपूर्ण राष्ट्र, संपूर्ण विश्व स्वर्ग बन जाएगा। जहाँ दुख न हो, जहाँ द्वेष न हो, जहाँ विकार न हो, जहाँ किसी भी प्रकार की कामना न हो, किसी प्रकार की गन्दगी न हो। स्वच्छ भारत केवल नारों से नहीं बन सकता। वह स्वच्छता, वह स्वास्थ्य हमारे अन्दर से ही मिलेगा। हमारी रक्तशिराओं में जो विकार आ गया है, हमारी चमड़ी में जो विकार आ गया है, हमारे ह्दय में जो विकार आ गया है, उन सबको हमको दूर करना है। तब हम स्वस्थ बनेंगे और इस बात का ध्यान रखेंगे कि बिना जागरूकता के स्वास्थ्य की रक्षा नहीं हो सकती।

इतनी सारी बातों को हम ध्यान में रखेंगे तो पता चलेगा कि काम बहुत महान है। इसीलिए एक-एक बात को, एक-एक शब्द को बड़े गौर से सुनना है। सुनने के

(शेष पृष्ठ 12 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

भगवान श्री कृष्ण के अनुसार दुनिया में मनुष्य दो प्रकार के हैं– एक दैवी सम्पद् नामक गुणों को धारण करने वाला देवताओं जैसा है और दूसरा आसुरी सम्पद् वाला, दुर्गुणों को धारण करने वाला पुरुष असुरों-जैसा है। आपका एक सगा भाई देवता और दूसरा सगा भाई असुर हो सकता है। मनुष्य स्वभाव से भी दो तरह के होते हैं– एक कृतज्ञ दूसरा अकृतज्ञ यानि कृतघ्न। दैवी सम्पद् नामक गुणों को धारण करने वाला सदैव कृतज्ञ बना रहेगा, जबकि आसुरी सम्पद् वाला सदैव अकृतज्ञ यानि कृतघ्न ही बना रहेगा अर्थात् अपने मतलब का यार होगा।

कृतघ्न लोगों के लिये चाहे कितना कुछ कर दें, फिर भी वे अपनी कृतघ्नता नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि कृतघ्नता तो उनके स्वभाव में है। जिनके लिये अपना सब कुछ लुटा दिया, पर बदले में मिली उन्हें कृतघ्नता। हमारे समाज में ऐसी कृतघ्नता के कई उदाहरण हैं–

बाबर को दूसरी बार युद्ध में चुनौती देने के लिये खानवा के आस-पास राणा सांगा तैयारी कर रहे थे, तब उनके ही विश्वसनीय कहे जाने वाले कायर और कृतघ्न सरदारों ने उन्हें विष दिया था। दुर्गादासजी की स्वामी भक्ति किसी से छिपी नहीं है। 30 वर्षों तक पहाड़ों और कन्दराओं में रहकर राजकुमार अजीतसिंह की रक्षा कर, अजीतसिंह को मारवाड़ के राज्य सिंहासन पर बैठाकर, जोधपुर के किले के कंगूरों को अपनी पाग के पल्ले से साफ किया था। अपना सर्वस्व मारवाड़ पर अर्पण करने वाले दुर्गादास की 30 वर्षों की सेवा के बदले में मिला मारवाड़ से देश निकाला। उन्होंने मारवाड़ छोड़कर कुछ समय मेवाड़ और बाद में मध्यप्रदेश में क्षिप्रा के तीर अपना शेष जीवन बिताया था। श्री क्षत्रिय युवक संघ में जिन लोगों ने जीवन भर साथ रहने व साथ देने का वादा किया, पूज्य श्री तनसिंहजी ने दौड़कर उनका अपूर्व स्वागत किया, उनकी आवभगत की, उनके लिये पलक पाँवड़े बिछाये, उन्हें अपने यहाँ आश्रय देकर पनपाया, उनकी हर-प्रकार से सेवा कर अपनी छत्रछाया में उनके जीवन को संवारा, अपने आत्मीय प्रेम से उन्हें सींचा, अपने हृदय में जगह दी, लेकिन उनमें से कुछ लोग नहीं निभा सके तो कुछ लोग समय-समय पर विरोध पर भी उतर आए। उन्हीं लोगों के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा –

''अरे तुम्हें तो भूल ही गया! पर तुम्हें भूल नहीं सकता, तुम्हारा किया हुआ घाव भर नहीं सकता। तुम वे व्यक्ति हो, जो किसी के घर में मेहमान बनकर घुसते हो और दो दिन बाद उसी घर का मालिक बन कर घर वालों को मेहमान बना देते हो। जब तुम मेरे घर में मेहमान बनकर आये थे, मैंने तुम्हें हथेलियों पर सुलाया, कलियों की भाँति झड़कर तुम्हें पनपाया, आँसुओं को पीकर तुम्हारी खुशी के नशे में पागल बना, तुम्हें अपने हृदय मंदिर में ही नहीं बिठाया, अपने हर साथी के हृदय को शिवालय बनाकर उसमें तुम्हारा अभिषेक किया, पर तुमने मेरी प्रीति की गुड़िया पर नीति का तेजाब छिड़क दिया। ....हम लोगों की यह मान्यता है कि हमारी विचारधारा को जिस किसी ने चिड़िया का घौंसला समझ रखा है, या कोई आरामदेह धर्मशाला समझ रखा है, वे पंछी तो एक रात बसेरा लेकर फिर उड़ जायेंगे, परन्तु उनके समाज के नव-निर्माण का भव्य भवन किसी एक भी निरपराध व्यक्ति की हड्डियों पर नहीं खड़ा किया जा सकता। तुम लोग जिस अन्याय का गला फाड़-फाड़ कर प्रतिवाद करते हो, वही हम लोगों की अदालत का सबसे बड़ा न्याय है। तुम आज अनजान बन गये, क्योंकि तुमने दूसरों को गिराकर अपना मार्ग बनाने की पूंजीपतियों और अमीरों की आदत सीखी, पर अपने आपको गिराकर दूसरों को ऊपर उठाने में हमारी संघर्षपूर्ण सहनशीलता की परम्परा नहीं सीखी। मेरे मतलब

के यार! आज हमारे जीवन में कर्तव्य का महासागर हिलोरें मार रहा है। बन्धुत्व की लहरें परिस्थितियों के किनारों से अठखेलियाँ कर रही हैं। आज जो कुछ हो रहा है, वह तुमने अपने जीवन में कभी नहीं देखा। होनहार के जहर भरे प्याले जो चिरकाल से मंजे हुए पियकड़ों की प्रतीक्षा में थे, आज गटागट उंडेले जा रहे हैं। भाग्यहीन! इस दृश्य की एक झलक तो देख जाते। तुम सोचते थे, तुम्हारे जाने के साथ यह महफिल उठ जायेगी, पर मेरे मतलब के यार! तुम बड़े घाटे में रहे। असलियत में महफिल तो अब रंग ला रही है, तुम तो दगा दे गये, सो गये, इस नशे में तुम्हारी याद भी हमारे दिल से निकल कर बड़ा ही जबरदस्त दगा दे गई है। यह सत्य है कि अब भी जिन पर इस महफिल का नशा नहीं छाया, तुम्हारी याद में अन्तिम सिसकियाँ भर रहे हैं, क्योंकि वे और तुम जिस सत्य को आग्रहपूर्वक सत्य मान रहे हो, वह वस्तुत: सत्य नहीं, एक छलना है और जिनकी श्रद्धा और विश्वास की पतवारें टूट गई हैं, वे इस छलना की नाव से जीवन सागर को पार नहीं कर सकेंगे। एक दिन आयेगा, जब तुम और वे डूबते हुए एड़ी और चोटी के जोर से पुकारोगे, तब तुम्हें बचाने और किनारे लगाने कोई नहीं आयेगा, सिर्फ मैं ही आऊँगा, अपने टूटे हुए दिल और हाथों को लेकर। तुम जिन महलों की ओर भागे जा रहे हो, तुम्हें मालूम नहीं है, वहाँ से बड़े बेआबरू होकर लौटना पड़ता है। तुम्हारा स्वागत तो केवल हमारी कुटिया ही करती है। काश! निमंत्रण स्वीकार करते। ....मतलब के यार! अब तुम्हारे और हमारे रास्ते अलग हो गये हैं, पर हमारी राहें अभी बड़ी लम्बी हैं, शायद दूर जाकर मिल जावें।''

पूज्य श्री तनसिंहजी उदार दिल थे। उनका हृदय सागर के समान गहरा था। वे किसी का बुरा नहीं चाहते थे। वे नेक इंसान थे इसलिए हर एक के साथ नेकी ही बरतते थे। उन्होंने अपने विरोधी का भी कभी बुरा नहीं चाहा। आज तक जिस किसी ने उनको बुरा-भला कहा, उनके साथ गाली-गलोच किया, उन्हें भर पेट गालियाँ दी चाहे जितना उनका विरोध किया, उन्होंने तो सभी को क्षमा किया। विरोध के बदले कभी उन्होंने अपने विरोधी का विरोध नहीं किया। पूज्यश्री ने समय को सम्बोधित करते कहा-

''तुमने मेरे जीवन में अपनों का विरोध भी दिया, फिर भी जो विरोध आये, उनका सामना मैंने कभी किया ही नहीं, जिन्होंने किया वे ही जानते हैं। सबका शत्रु हरेक का शत्रु कैसे होता है? और कैसे सबका मित्र हरेक का मित्र होता है?''

पूज्य श्री तनसिंहजी को अनेकों ऐसे सहयोगी मिले हैं जिन्होंने पूज्यश्री को भरपूर सहयोग दिया और सदा-सदा के लिये पूज्यश्री के हो के साथ बने रहे। दूसरी तरफ ऐसे भी लोग आये हैं जिन्होंने भरोसा तोड़ा, वादा खिलाफी की और बीच राह छोड़ चले। संघ में आने-जाने का यह सिलसिला चलता रहा है। पूज्यश्री के सहयोगियों ने, उनके निकटतम साथियों ने ऐसे लोगों के बारे में पूज्यश्री से कहा, कौन आया और कौन गया, आप परेशान न हों। आप तो निश्चिंत होकर अपने कार्य में लगे रहें, किसी की परवाह न करें। इस पर पूज्यश्री तनसिंह ने कहा -

''कुछ लोग मुझे यह भी कहते हैं, मुझे किसी की परवाह नहीं करनी चाहिए। कोई आओ, चाहे कोई जाओ, स्थितप्रज्ञ की भाँति ही मुझे अपना कार्य करते रहना चाहिए। मैंने स्थितप्रज्ञ बनने की भी चेष्टा की है, पर मुझे तुम नहीं, वे दिन याद आते हैं, वे रातें याद आती हैं, वे भोले-भाले पगले और निष्पाप क्षण याद आते हैं, जिनमें तुम और हम मिले थे। वे शब्द और वाक्य याद आते हैं, वे वादे और विश्वास याद आते हैं। तुम्हीं बताओ मैं उस भोलेपन को कैसे भूल जाऊँ, उस निष्पाप पागलपन को कैसे भूल जाऊँ जो मेरे जीवन का स्पन्दन है। उन शब्दों और वाक्यों को कैसे भूल जाऊँ, जिनकी नींव पर मैंने अपने जीवन की इमारत खड़ी की है। उस विश्वास को कैसे भूल जाऊँ, जिसे तुमने मुझे भेंट किया था। एकमात्र वह बहुमूल्य उपहार जिसे तुमने मुझे कभी दिया था चाहे वह बेहोशी और बचपन में ही दिया हो, भुलाये नहीं भूल सकता। मैं विश्वासघाती नहीं हो सकता। मैं अकृतज्ञ नहीं हो सकता। तुमने जो दिन मेरे साथ बिताए, उनका वास्तव में मैं ऋणी हूँ और यही ऋण है, जो मुझे खाये जा

रहा है। तुम्हें भूल सकता हूँ, पर तुम्हारा ऋण कभी नहीं भूल सकता और वही ऋण मुझे खाये जा रहा है। नींद उचट गई। भविष्य क्या बनाऊँ, तुम्हारे और मेरे संयोग का वह भूतकाल, बिछुड़े हुए लोगों से पुनर्मिलन की माँग कर रहा है। उसकी माँग सही है, क्योंकि भविष्य की भी तो यही माँग है। तब क्या करूं, मेरे मेहमान! मैं तुम्हारे लिये परेशान हो रहा हूँ और तुम निश्चिंत होकर खर्राटे ले रहे हो, क्या स्वप्न भी तुम्हें नहीं आते? उन बीते हुए दिनों का उत्साह, धुंआधार कार्य, उत्कृष्ट और अव्यभिचारिणी निष्ठा, तुम्हारा वह विशुद्ध प्रेम, क्या वह सब छलना थी? क्या तुम छलना थे? क्या भूतकाल एक धोखा था? मेरे मेहमान! मैंने तो सब सत्य समझा था और जो कुछ दिया, सत्य समझ कर ही दिया था, फिर वह भी छलना हो गया? मेरे जीवन की बहुमूल्य से बहुमूल्य निधि भी छलना हो गई? यदि यह सब कुछ सत्य था, उसे न तुम्हारा वियोग नष्ट कर सकता और न मेरी स्थितप्रज्ञता की स्थिति ही। वह याद रहेगा भुलाये नहीं भूल सकता। और यदि वह छलना ही थी तो स्वप्न भी एक छलना ही है, तुम्हें अवश्य स्वप्न आते होंगे, क्योंकि मुझे भी इन सपनों ने परेशान किया है। कुछ तो संदेश देना, मेरे मेहमान! तुम्हें क्या अनुभव हो रहा है?''

कुछ लोग संघ परिवार में आये जरूर और फिर वजह-बेवजह इस कुटुम्ब को छोड़ चलते बने। एक बारभी जो संघ कुटुम्ब में आ गया फिर चाहे वह छोड़ चला भी गया, पूज्य श्री तनसिंहजी ने उन्हें कभी नहीं भुलाया। पूज्यश्री ने तो उन्हें सदा अपना ही समझा, चाहे वह पास है या दूर है। वे उन्हें अपने दिल से कभी नहीं निकाल पाये। पूज्य श्री तनसिंहजी ने उन लोगों को मेहमान की उपाधि दी और जो सदा-सदा के लिये संघ परिवार के तो नहीं बन पाये, पर मेहमान की तरह आये और मेहमान की तरह ही चलते बने। पूज्यश्री ने मेहमान की तरह इस संघ कुटुम्ब को छोड़कर जाने वालों की खुशहाली के लिये भी सदैव परमेश्वर से प्रार्थनाएँ की -

''मेरे आज तक के मेहमानों! तुम में से कोई आज ढाई सौ रुपये की तनख्वाह पाता है, कोई डेढ सौ की। कोई सिपाही है, तो कोई अफसर। मेरे लिये इतना ही संतोष है कि तुम सुखी हो। मेरे द्वार पर एक बार चाहे कोई अभ्यागत के रूप में आ गया हो, मैंने कभी नहीं भुलाया। उसके सुख के लिये मेरे हृदय में आर्त प्रार्थनाएँ सदैव निकला करती हैं, इसलिए मेरे मेहमान! तुम जहाँ कहीं भी हो, खुश रहो, धन कमाओ, फलो-फूलो, अपने कुटुम्ब का पोषण करो और सदैव सुखी रहो। तुमने जिस किसी कामना से मेरा द्वार छोड़ा है, ईश्वर तुम्हारी वे सब कामनायें पूरी करें जिससे तुम वापिस मेरे द्वारआ सको और न आ सको तो भी जहाँ कहीं रहो सुख पूर्वक रहो।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने इस संघ कुटुम्ब को छोड़कर जाने वालों की खुशहाली के लिये सदैव ईश्वर से प्रार्थनाएँ की हैं और साथ में यह भी संदेश दिया कि यह कुटुम्ब तुम्हारा ही है, जब भी वापिस लौट के आओ, तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारे लिए इस कुटुम्ब के द्वार सदैव खुले हैं। पूज्यश्री ने हर एक जाने वाले से लौट के आने का आग्रह किया-

''मेरे मेहमान! घबड़ाओ नहीं, लज्जित मत हो, मेरे द्वार खुले हैं। तुम्हीं उन्हें खोलकर गए थे, वे खुले रहेंगे, जब इच्छा हो तब आ जाना और यदि भय लगता हो तो एक मेरा उपदेश भी याद रखना, साधना के क्षेत्र में भय, लज्जा और घृणा तीनों पर विजय प्राप्त करनी होती है। फिर भी तुम्हें छूट है, सीधे दरवाजे से घुसने में तुम्हें लज्जा आती हो, तो चोर दरवाजे से घुस जाना, वह सदा खुला रहता है। सीधे दरवाजे से घुसोगे, तो गाजे बाजे से तुम्हारा स्वागत किया जायेगा और चोर दरवाजे से घुसोगे, तो तुम्हारी उपस्थिति मात्र से स्वीकार कर लिया जायेगा। आलिंगन और आँसुओं की कसम। मेरे मेहमान! मेरी यत्किंचित् सम्पत्ति को न छीनो, मैं उसी से संतोष करता हूँ। मुझे राजा नहीं चाहिये, तुम्हारे जैसे साधारण ही चाहिये।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने एक बार जिस किसी को अपना लिया, अपना बना लिया, अपने दिल में बसा लिया, उन्हें वे किसी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहते थे, चाहे वह उनका कैसा भी शत्रु बन गया हो, चाहे उसने कितना ही विरोध क्यों न किया हो, चाहे वह विद्रोही बनकर सामने

क्यों न खड़ा हो गया हो। अपने विरोधियों के प्रति, अपने विद्रोहियों के प्रति, अपने शत्रुओं के प्रति ऐसी आत्मीयता, यदि वह कहीं मिल सकती है तो वह पूज्य श्री तनसिंहजी के पास, उनके दिल में। ऐसा आत्मीय भाव आज तो कहीं नजर नहीं आता। यदि ऐसी आत्मीयता हर एक में आ जाए, हर एक में उतर आये, तो यह धरती स्वर्ग बन जाए, आसमान से अमृत बरसने लग जाए और धरती-आसमान अमृत से सराबोर हो जाए। पूज्यश्री का हृदय से लगाव है, इसलिए आत्मीय भाव से आग्रह करते हैं वापिस लौट के आने का। ''अब लौट के आ जा मेरे मीत'', यह पूज्य श्री तनसिंहजी के दिल की पुकार थी। इस पुकार में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा –

''मेरे मेहमान! मैं तुम्हें बहुत कुछ कहना चाहता हूँ, कहे जाना चाहता हूँ, लिखे जाना चाहता हूँ, याद दिलाये जाना चाहता हूँ, क्योंकि मैं चाहता हूँ, तुम अब मेहमान कहलाना छोड़ दो। यह कहो,-''मैं कैसा मेहमान? यह तो मेरा ही घर है, इसमें लज्जा और कैसा संकोच?'' मैं यही शब्द चाहता हूँ। जब तक यह नहीं कहोगे, मैं कभी तुम्हें आग्रह भरा निमंत्रण दूंगा, कभी तुम्हारे वियोग में गीत गाऊँगा, कभी एकान्त में बैठकर आँसू बहाऊँगा, कभी पुकारूंगा और कभी तुम्हें गालियाँ दूंगा, तुम्हें धिक्कारूंगा, लज्जित करूंगा और तुम्हारे दिल में घाव और पीड़ा पैदा करूंगा, जिससे तुम मेरे लिये तिलमिला उठो। जब तक ऐसा नहीं करोगे, तुम्हारा पीछा नहीं छोडूंगा। यदि तुम स्वर्गारोहण करोगे, तो मैं भी तपस्या में जुट कर तुम्हारे पीछे पहुँच जाऊँगा, यदि तुम नर्क में जाओगे, तो मैं पाप करने लगूंगा, पर छोडूंगा वहाँ भी नहीं। मुझे क्षमा करना, मैं दिल से बुरा नहीं हूँ, तुम्हें परेशान करने के लिये ऐसा नहीं करूंगा, यह मेरा स्वभाव है, माँगने वाले का स्वभाव है। वह मांगी हुई वस्तु लेकर ही छोड़ता है, तुम कितना ही दुत्कारों, फटकारो, पर तुम्हारे द्वार से ही वह कुछ न कुछ तो ले ही जायेगा और मैं ले जाऊँगा तुम्हारा हृदय,जो वास्तव में मेरा ही दिया हुआ है। देखता हूँ तुम हृदयहीन हो या दयालु। मैंने जब कभी अपनी झोली पसारी तुमने अपना सर्वस्व दिया था, लेकिन जाते समय अपना सर्वस्व ले भी गये। पहले तुम मेरे द्वार आए थे और अब मैं तुम्हारे द्वार आया हूँ, देखता हूँ, कब तक छिपा कर रखते हो? वास्तव में तो मैं तुम्हारा मेहमान बन गया हूँ। तुम सोचते हो, यह चला जाएगा, पर नहीं, दानी जितना ढीट बनता है, माँगने वाले को उससे दुगना ढीट बनना चाहिये और इसलिए मैं भी ढीट बना हुआ तेरे द्वार खड़ा हूँ, लेकिन अपने आपको कभी मेहमान नहीं कहूंगा, तुम्हें ही मेहमान कहूंगा। तुम समझते हो या नहीं, पर मैं तो तुम्हें मेहमान कहकर तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ।''

(क्रमशः)

पृष्ठ 8 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

बाद आचरण का विषय है। लेकिन जो सुनता ही नहीं वह आचरण कैसे करेगा। अत: जो कहा जा रहा है उसे सुनें, जो हो रहा है उसे देखें और वहाँ हमारे कदम चल पड़ें, तब हम कर्मनिष्ठ बनेंगे, धैर्यनिष्ठ बनेंगे, राष्ट्र निष्ठ बनेंगे। यह बहुत बड़ी प्रक्रिया का हिस्सा है। पहली बात है कि बलवान बने बिना काम नहीं चलेगा। जो कमजोरियाँ अन्दर हैं, उन सबको दूर करना होगा। सुबह शंख बजता है, विशल बजती है तब आज्ञा है उठने की। नहीं उठे तो घटप्रमुख बुरा भला कहेगा या शिक्षक कुछ कहेगा इस भय से उठते हैं या कभी सोचते हैं थोड़ी देर और सो लें तो यह संघर्ष में पिछड़ना है। सुबह उठते ही सबसे पहला दुश्मन है आलस्य। आलस्य उस व्यक्ति को आता है जो स्वस्थ नहीं है। जिसका हृदय स्वस्थ नहीं है वह शक्तिमान नहीं बन सकता। रक्षा वही कर सकता है जो स्वयं बलवान हो। बलवान बनने के लिये जो यहाँ आए हैं, वे अपना निर्माण कर रहे हैं ताकि वे संसार का निर्माण कर सकें, नए भारत का, नये युग का निर्माण कर सकें। आज के मंगल प्रभात में क्षत्रिय युवक संघ का यही संदेश है कि इस जीवन निर्माण में लगे रहें।

जय संघशक्ति!

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक-पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य-श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद-प्रोफेसर रूपसिंह लिम्बड़ी

अवतरण-17

शौर्य, तेज, धैर्य, युद्धप्रियता, दानशीलता और प्रजा के प्रति ईश्वरीय भाव के आदर्श माप-दण्ड; क्षात्र-धर्म रूपी कर्म को मैं स्वाभाविक रूप से आत्मसात् करूं। मेरी यह प्रार्थना स्वीकार हो,-इस जीवन के लिये भी और भावी जन्म के लिये भी,- सुख में भी और दुख में भी।

इस अवतरण में भगवान श्री कृष्ण द्वारा श्रीमद् भगवद्गीता के अट्ठारवें (18) अध्याय के श्लोक तियालीस (43) में वर्णित गुणों का आधार लेकर क्षत्रिय के आवश्यक और अनिवार्य गुणों की चर्चा की गई है।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।। 18-43

जो स्वयं के क्षत्रिय होने का दावा करता है उसके व्यक्तित्व में निम्नांकित गुणों का होना अनिवार्य है। सबसे प्रथम गुण है-शौर्य। क्षत्रिय शूर-वीरता से भरा होना चाहिए। वीर रस की अभिव्यक्ति उसके व्यक्तित्व में प्रस्फुटित होनी चाहिए। वह कायर नहीं होना चाहिए। क्षत्रिय के लिय कुछ भी हो बस कायर मत बन, यह जीवन सूत्र होना चाहिए। शौर्य तब आता है जब शारीरिक बल एवं दृढ़ मनोबल होता है। क्षत्रिय विश्वसनीय होना चाहिए। गुजराती भाषा में क्षत्रिय-शूरवीर के लिये एक दोहा है-

वा फरे वादळ फरे, फरे नदी ना पूर।
शूरा बोल्या ना फरे, भले पश्चिम उगे सूर।।

इसका अर्थ यह है कि वायु अपने बहने की दिशा बदल सकती है। बादल भी अपनी दिशा बदल सकता है। नदियों का जल-प्रवाह भी उल्टी दिशा में प्रवाहित हो सकता है। सूर्य भी भले पूर्व के बदले पश्चिम दिशा में उदित हो, फिर भी शूरवीर क्षत्रिय ने जो वचन दिया वह नहीं बदलता है। यह है विश्वसनीयता। क्षत्रिय का जीवन तेजस्वी हो अर्थात् कान्तिवान हो, प्रतापी हो, प्रभावी हो। इसके साथ वह धैर्यवान हो, किसी भी विपरीत परिस्थिति में भी धैर्यपूर्वक अपना कर्तव्य करता रहे। दक्षता अर्थात्-चतुराई, तत्परता, हिम्मत उसका स्वाभाविक गुण है। दक्षता में स्वतंत्र-निर्णय शक्ति एवं किये गए निर्णय को कार्यान्वित करने का सामर्थ्य निहित है। किसी भी प्रकार के संघर्ष से मुँह न मोड़ना क्षत्रिय का स्वभाव होता है। संसार में पग-पग पर संघर्ष है, पर पूरी तत्परता से संघर्षरत रहना क्षत्रिय का स्वभाव है। क्षत्रिय को दानवीर भी होना चाहिए। अन्तिम व सातवां गुण है ईश्वरीय भाव। प्रजा ही नहीं, समस्त जीवों के प्रति पक्षपात रहित दृष्टि एवं समभाव क्षत्रिय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण है। बाकी 6 गुण विद्यमान हों पर यदि ईश्वरीय भाव नहीं है तो क्षत्रियत्व नहीं रहेगा। इन गुणों का पालन ही क्षात्रधर्म है। क्षत्रिय का यही कर्मक्षेत्र है, कर्तव्य है।

मानव जीवन के चार पुरुषार्थों में अन्तिम पुरुषार्थ है-मोक्ष प्राप्ति। क्षत्रिय के लिये अपने जीवन का परम लक्ष्य क्षात्रधर्म का, अपने कर्तव्य कर्म का पालन ही है। उसका पूरा जीवन, जीवन की प्रत्येक प्रकृति का अन्तिम लक्ष्य क्षात्रधर्म का पालन ही है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का समावेश क्षत्रिय के लिये क्षात्रधर्म के पालन करने में ही हो जाता है। क्षत्रिय और क्षात्रधर्म एक दूसरे से जुड़े हैं। जो क्षत्रिय होने का गौरव प्राप्त करना चाहता है उसे क्षात्रधर्म का पालन करना पड़ेगा और जो क्षात्रधर्म का पालन करेगा वही क्षत्रिय कहलायेगा।

आज इस विषय पर गंभीतरपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। देश-काल की परिस्थिति की प्रतिकूलता में क्षात्रधर्म का पालन क्षीण होता जा रहा है।'क्षत्रिय' संज्ञा गुणवाचक है, जातिवाचक नहीं। गुणवाचक संज्ञा गुण के नष्ट होने पर नष्ट हो जाती है। जैसे अग्नि का गुण है दाहकता, जब तक दाहकता है तब तक वह 'आग' है; दाहकता के लुप्त होते ही आग की संज्ञा बदलकर 'राख' हो जाती है।

यदि हमें क्षत्रिय संज्ञा धारण किये रखना है तो इन क्षत्रिय के गुणों को धारण करना होगा। इन गुणों के अभाव में हम 'क्षत्रिय' संज्ञा से सम्बोधित नहीं हो पायेंगे। इतिहास इस बात का साक्षी है। आज एक बहुत बड़ा जन समूह क्षत्रिय संज्ञा से वंचित हो गया है।

साधक की मनोकामना है कि क्षात्रधर्म का आदर्श वह इस जन्म में आत्मसात करे और भावी जन्म में भी, दुख में भी, सुख में भी यही उसका आदर्श बना रहे। यही साधक की परमेश्वर से प्रार्थना है।

आज जो हम अपने को क्षत्रिय मानते हैं वे क्षात्रधर्म को आत्मसात करने की क्षमता खो चुके हैं। क्षात्रधर्म का आदर्श आत्मसात करने के लिये प्रचण्ड पुरुषार्थ की आवश्यकता है। क्षत्रिय युवक संघ क्षात्रधर्म को आत्मसात करने की ही साधना है, पर सभी ने क्षात्रधर्म की व्यापकता का गंभीरता से मूल्यांकन किया हो यह आवश्यक नहीं। तत्परता के साथ अपनी साधना में प्रचण्डता लाने की आवश्यकता है। हम भी परमात्मा से प्रार्थना करें कि हमें भी वह समझ और शक्ति प्रदान करे जिससे हम क्षात्रधर्म और क्षात्रकर्म को आत्मसात कर सकें।

सार– सत्कर्म, सदाचार एवं क्षात्रधर्म ऊर्ध्वगामिनी साधना की अपेक्षा रखते हैं।

अवतरण–18

चेतना के स्वाभाविक जागरण से सब जाग उठें, ज्ञान की उज्ज्वल प्रदीप्ति से सब दीप्त हो जायें, स्फूर्ति के मंगलमय प्रांगण में सब प्रवेश कर जायँ,–सबको कर्तव्यपथ–गामी बनाने के लिये शंखधारी विष्णु के गुणों को मैं धारण करूं, उद्‌बोधन का महाशंख बजाऊँ, महा निशा की समाप्ति का ढिंढोरा पीटूं। प्रकाश, जागृति और ज्ञान का अखण्ड साम्राज्य हो तब। मेरे मानस के गूढतम प्रदेश की निश्छल पुकार है! माँ, शक्ति वर दे!

जगा दूँ चेतना, भगा दूँ जड़ता
फैला दूँ प्रकाश, उजागर कर दूं जग को
माँ शक्ति वर दे! भर दे मेरे मन को
पुकारूँ और किसे? माँ तेरे सिवा किसको?

सामाजिक जागरण, सामाजिक कर्तव्य पालन, सामाजिक संगठन की बातें करना तो सबको पसन्द है। ऐसी बातें सुनने में बहुत अच्छी भी लगती हैं। सामाजिक भावनाओं को उकसाती भी हैं, परन्तु इन बातों को व्यवहार में लाना, वैसा आचरण बनाना आसान नहीं है। साधक अपने स्तर से यह बात समझाने का प्रयत्न कर रहा है। यहाँ तीन शब्द बड़े महत्त्व के हैं, हमें इन तीन शब्दों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। ये शब्द हैं–चेतना, ज्ञान और स्फूर्ति। सामाजिक कर्तव्य की, उत्तरदायित्व की, समाज धर्म या क्षात्रधर्म की बातें किसे कही जाए? किसे सुनाई जाए? इसके लिये वक्ता व श्रोता की क्या योग्यता होनी चाहिए, ये सब बातें इस अवतरण में उचित रूप से बताने का प्रयास किया गया है।

जहाँ पर लोगों की सामाजिक चेतना जाग्रत हो, समझ शक्ति का विकास हो, मन में स्फूर्ति हो, मन प्रफुल्लित हो और योग्य नेता उद्‌बोधक हो, वहाँ समाज लक्षी, समाज के उत्थान की, सामाजिक कर्तव्य की बातों पर विचार हो सकता है और उसे व्यवहार में आचरित किया जा सकता है। आज हमारे सामने सवाल यह है कि क्या हमारी सामाजिक चेतना जागृत है? उत्तर तो सब 'हाँ' में ही देते हैं किन्तु जब व्यवहार को देखा जाता है तो उस हाँ का प्रमाण नहीं मिलता है। किसी सामाजिक, राजकीय, राष्ट्रीय अथवा धार्मिक प्रसंग पर जहाँ हमारी आवश्यकता होती है, वहाँ बड़ी मुश्किल से कृत्रिम चेतना–जागृति दिखाई देती है। खींचकर, घसीटकर लोगों को एकत्रित किया जाता है। यह बात दुख के साथ स्वीकार करनी पड़ती है। ऐसे तो अनेक उदाहरण मिलते हैं किन्तु पूरे समाज को स्पर्श करने वाली घटनाएँ भूमि सुधार कानून, सीलिंग जैसी हमारी आर्थिक परिस्थिति एवं सामाजिक प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाने वाली घटनाओं पर भी हम एकजुट होकर संघर्ष करने में असमर्थ रहे और अन्याय को सहन कर लिया। राज्यों के विलिनीकरण के समय राजाओं के लिये प्रिविपर्स की व्यवस्था कानूनन की गई थी, उसे हटा दिया गया, यह सरासर अन्याय था पर हमारी चेतना सुसुप्त ही रही। हम

अपनी अस्मिता की रक्षा करने में असमर्थ होते जा रहे हैं। इस वेदना को अभिव्यक्ति देते हुए इसी मेरी साधना के बत्तीसवें अवतरण में स्व. आयुवानसिंहजी लिखते हैं,-

''मेरे देखते ही देखते वह समाज भवन ढहने लगा। भगवान राम और कृष्ण, कर्ण और युधिष्ठिर, बुद्ध और चन्द्रगुप्त का समाज इतना निर्बल, पंगु, साहसहीन, निर्लज्ज और मूढ निकलेगा,-यह विचारातीत था।''

हमारे समाज में विशेष रूप से युवकों में आज कितनी स्फूर्ति है? इस प्रश्न का उत्तर मैं पाठकों के लिये छोड़ देता हूँ।

साधक की अपेक्षा है-''स्फूर्ति के मंगलमय प्रांगण में सबका प्रवेश हो'' किन्तु समाज की वर्तमान दशा देखते हुए साधक की अपेक्षा-पूर्ति की संभावना कम दिखाई देती है। फिर भी एक मार्ग है,-यदि हम सब एक हृदय होकर पूज्य तनसिंहजी के द्वारा स्थापित मार्ग पर चलें, तो साधक की इस घोषणा को सार्थक किया जा सकता है। हम सब यही चाहते हैं कि हमारा समाज जागृत होकर, शक्तिमान एवं संगठित होकर अपने क्षात्रधर्म पालन में अग्रसर हो। राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में हम अग्रिम पंक्ति में खड़े हों।

छोटे-छोटे वाक्यों में, लघु अवतरणों में बहुत ही गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति करके साधक ने समाज को कर्तव्य पथ पर चलने के लिये शंखधारी विष्णु के गुणों को धारण करने की बात कही है। इस भूमि पर हम क्षत्रिय विष्णु अर्थात् ईश्वर के प्रतिनिधि माने जाते रहे हैं। इस भूमि पर विचरण करने वाले सभी देह धारियों-प्राणीमात्र की रक्षा का, उनके पालन-पोषण का उत्तरदायित्व ईश्वर ने हमें दिया है। यह हमारा क्षात्रधर्म है, यह हमारा कर्तव्य कर्म है।

हमें माँ शक्ति से यही एक वर माँगना है-'हमें कर्तव्य पथ पर चलने का बल प्रदान करो।'

जय संघशक्ति!

सार- अज्ञान, प्रमाद एवं आडम्बर की महानिशा समाप्त होने वाली है। भेरी बोले-'जागो-जागो।'

अवतरण-19

मैं शासित-पराये हाथ की कठपुतली क्यों? अन्यों के साध्य पूर्ति का साधन क्यों? राजनीति मेरी चेरी पर अब मैं उसका दास, नहीं खिलौना? यह असह्य है देव! सुदर्शन चक्र चलाने का सामर्थ्य प्राप्त करूँ, शत्रुओं के गर्व का चक्र को कलेवा दूँ-राजनीति मेरे चक्र द्वारा संचालित और नियंत्रित हो, मेरा उस पर शतप्रतिशत अधिकार और वश हो। यह मेरे धर्म का आदेश है-शिरोधार्य करना मेरा धर्म है। यह तुच्छ अभिलाषा पूर्ण हो देव!

शासक अब शासित हुए
स्वधर्म भूल दीन-दास बने

इस अवतरण में साधक की अपनी वर्तमान दीनदशा की असह्य वेदना की अभिव्यक्ति है। हजारों वर्ष की हमारी परम्परा टूट गई। शासन हमारा अबाधित अधिकार है, परन्तु हमारा स्वधर्म, क्षात्रधर्म छूट गया तो शासन की बागडोर भी छीनी गई। हमारी राजकीय स्थिति दयनीय हो गई। जो राजनीति हमारी दासी थी, आज हम उसके दास ही नहीं, एक खिलौना बन गये। दास कम से कम सजीव तो होता है, खिलौना तो निर्जीव होता है। खेलने वाला जब चाहे तब खेले, जब चाहे फेंक दे। राजनीति में आज हमारी यही दशा है। फिर भी हमें यह दशा जरा भी खटकती नहीं है। राजपूतों के सहयोग से ही मुगलों ने राजपूतों को परास्त कर शासन स्थापित किया। इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों के साथ यह कलंक भी यथावत है। इतिहास को विकृत करके राजपूतों को हीन बनाने का प्रयत्न चलचित्रों द्वारा, कथा कहानियों द्वारा किया जा रहा है। जिसके विरोध में कभी-कभार कोई थोड़ा सा कहीं ऊहा पोह होता है, फिर सब ठीक ठाक हो जाता है। ऐसी बातें सुनकर, अखबारों में पढकर भीतर ही भीतर ऊब उठते हैं। दिल में असह्य कसक उठती है किन्तु विषहीन सर्प की भाँति केवल फुफकार कर रह जाते हैं।

लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में लोकमत से शासक निर्धारित होते हैं। 19वीं शताब्दी जन जागरण की शताब्दी थी। वंश पारम्परिक शासक प्रणाली जिसे आज लोग 'राजाशाही' कहते हैं, उसका अंत हो गया और अब

प्रजातांत्रिक युग चल रहा है, जिसमें लोगों के मत से शासक बना जा सकता है। ऐसी स्थिति में शासक बनने के लिये लोकसंग्रह, संगठन अनिवार्य है। हम संगठित नहीं हो पाते हैं अतएव शासन में हमारी प्रभावकता जितनी होनी चाहिए उतनी नहीं है। शासक वर्ग में हमारे लोकतंत्र के लोक नेताओं में क्षात्रधर्म का, क्षात्रशक्ति का अभाव होने के कारण प्रजा त्रस्त है। सर्वत्र अराजकता फैली हुई है। अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, व्यभिचार इतना फैल गया है कि राष्ट्र का, समाज का कोई भी क्षेत्र इससे बच नहीं पाया है। प्रजा का बहुत बड़ा वर्ग इस शासन प्रणाली से नाखुश है। सब चाहते हैं कुछ परिवर्तन होना चाहिए परन्तु कोई उपाय दृष्टिगत नहीं होता। आज सारा विश्व, दुनिया भर के लोग आतंकी वृत्ति से पीड़ित हैं। सबकी दृष्टि भारतवर्ष पर है कि ये कुछ करेंगे और भारत की समझदार जनता हम क्षत्रियों पर विश्वास रखकर बैठी है कि ये क्षत्रिय ही इस देश को, संसार को बचायेंगे; किन्तु हम लोग निष्क्रिय होकर अपने-अपने ढंग से जीवन यापन कर रहे हैं। देश, काल, परिस्थिति और लोकतंत्र का बहाना बनाकर अपने कर्तव्य पथ से विचलित हो गये हैं।

आज हमें अपने गौरवान्वित इतिहास का स्मरण करके अपनी क्षति एवं त्रुटियों को दूर करके पुन: अपने क्षात्रधर्म के पालन के लिये कटिबद्ध होना है। शासन करना क्षत्रियों का अबाधित अधिकार होने पर भी आज हमें शासन से दूर हटाया गया है। अपने अधिकार की रक्षा के लिये अपनी दुर्बलताओं को दूर करके, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग कर, अपने सामाजिक हित का चिंतन कर अपने क्षात्रधर्म का पालन करें तो आज प्रजातंत्र -लोकतंत्र में भी लोकमत हमारा ही समर्थन करेगा। आवश्यकता है हम स्वयं संगठित होकर वर्तमान में समाज में व्याप्त अनीति, असत्य एवं आडम्बरी आचरण का विसर्जन कर नीति, न्याय और शास्त्र-सम्मत शासन की स्थापना करें। इसके लिये शोसित, गरीब, दुर्बल जनता को शोषण करने वालों के चंगुल से छुड़ाना होगा। स्त्रियों, बालिकाओं से बलात्कार करने वालों को दण्डित करना होगा, हमारे अन्दर 'जटायुवृत्ति' पैदा करनी पड़ेगी। क्षात्रधर्म का यही आदेश है। हमें अपने स्वधर्म का पालन करने की आवश्यकता है। हम अपने 'स्वभाव' को भूल गए हैं। हमारे अन्दर प्रविष्ट 'वैश्यवृत्ति' को दूर करना होगा।

हम परिस्थिति के दास नहीं हैं। परिस्थिति की प्रतिकूलता से संघर्ष करना ही हमारा जातिगत स्वभाव है। हम शासन प्राप्ति इसलिए नहीं चाहते हैं कि हमें शासकीय सत्ता से भोग-विलास करने का अवसर प्राप्त हो, किन्तु हम शासन प्राप्ति इसलिए चाहते हैं कि प्रजा पालन करने का, 'गौ, ब्राह्मण प्रतिपाल' के हमारे बिरुद को हम यथार्थ कर सकें। अन्यथा शासन प्राप्ति तो हमारे लिये तुच्छ वस्तु है। हमारा इतिहास बताता है कि हमारे पूर्वजों ने शासक होने का कभी मोह नहीं रखा। एक क्षण में महान चक्रवर्ती राज्यों का त्याग करने वाले पूर्वजों का हमारा इतिहास है। प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली से प्रजा को अधिक सुख मिलेगा इस हेतु हमने अपने छोटे-बड़े राज्य भारतीय राष्ट्र की एकता, अखण्डता एवं सुशासन के लिये ही बिना किसी हिचकिचाहट के अर्पण कर दिए। क्या यह हमारे त्याग-बलिदान का प्रमाण नहीं है। आज फिर प्रजा की असहनीय परेशानी से साधक परेशान है अत: वह प्रार्थना करता है- 'हे देव! इस अभिलाषा की पूर्णता हो।'

सार- आसुरी वृत्तियों को हटाकर, दैवी वृत्तियों की पुनर्स्थापना हेतु ही हमारी जननी ने हमें जन्म दिया है।

अवतरण-20

मैं अपने स्वभाव को भूल गया हूँ, इसीलिए चारों ओर पृथ्वी दस्युओं से परिपूर्ण, अधर्म से आवृत दीनों के करुण-क्रन्दन से कम्पायमान, असहायों की विवशता भरी चीत्कार से गुंजित हो कातर दृष्टि से निहार रही है। विष्णु की प्रबल गदा मेरे हाथ का आयुध बनकर इन दुष्टों का मस्तक विदीर्ण करे। तब मैं माँ दुर्गा को शोणित, माँस और मज्जा का रुचिकर भोग लगाऊँ-भगवान रुद्र के गले को रुण्डमालाओं से सजाऊँ।

जब भूले क्षत्रिय निज धर्म स्वभाव।
तब दीन–दुर्बल की रक्षा का हुआ अभाव।।

इसके पूर्व अवतरण के संदर्भ का अनुसंधान करते हुए साधक वास्तविकता को प्रामाणिक रूप से स्वीकार करते हुए अवतरण के प्रारम्भ में ही कहता है–''मैं अपने स्वभाव को भूल गया हूँ।'' मैं क्षत्रिय हूँ, क्षात्रधर्म का पालन मेरा सहज स्वभाव है। अब मैं अपना क्षात्रधर्म–पालन करना भूल गया हूँ। इतना ही नहीं लेकिन क्षात्रधर्म क्या है? क्षात्रधर्म का क्या मतलब है, इसकी भी मुझे विस्मृति हो गई है। फलत: केवल भारत वर्ष में ही नहीं परन्तु पूरे विश्व में अराजकता फैल गई है। विश्व के अधिकांश भू–भाग पर वैश्य या शूद्र वृत्ति से शासन चल रहा है। इस प्रकार के शासन के मूल में ही आसुरी वृत्ति अथवा आतंकी वृत्ति रहती है। परिणाम यह आया कि संसार की सभी सत्ताएँ, महासत्ता मानी जाने वाली सत्ताएँ भी आसुरी प्रवृत्तियों के भय की छाया में जी रही हैं। आज दुनिया के किसी देश का आम आदमी अपने को सुरक्षित अनुभव नहीं करता। सब जगह में सब भयभीत हैं। यह वर्तमान विश्व का स्वीकृत सत्य है।

साधक कहता है कि क्षत्रिय के निज स्वभाव की विस्मृति के कारण ही इस पृथ्वी पर चारों तरफ अधर्म की आवृत्ति से दीनों का करुण–क्रन्दन और असहायों की विवशता भरी व्याकुल करुण पुकारों से आसमान गूंज उठा है। इस भयानक परिस्थिति के लिये कौन उत्तरदायी है। कभी भी हमने इस प्रश्न के ऊपर गंभीरता पूर्वक विचार भी किया है?

संत समाज, साधुजन सबका यह मानना है कि क्षत्रियों की क्षात्रधर्म की निष्क्रियता ही इस परिस्थिति के लिये उत्तरदायी है। हमारे अपने क्षत्रिय चिंतक, विचारक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि हम अपने निज स्वभाव को, क्षात्रधर्म को भूल गए हैं। हमारे पूर्वजों ने जिस धर्म का पालन करके अपने इतिहास को उज्ज्वल एवं गौरवान्वित किया है, उन महान आत्माओं को आज भी जनता के लोग आदर व श्रद्धापूर्वक स्मरण करके नत मस्तक होते हैं। पर हम हमारा धर्म भूल गए हैं।

जिस क्षात्रधर्म का स्मरण कराने के लिये महाभारत की युद्ध भूमि पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता सुनाई थी वह गीता ज्ञान विश्वभर में मान्य है। दो सौ से अधिक भाषाओं में उसका अनुवाद हो चुका है। अनेक स्थानों पर युवा वर्ग को वह पढाई जा रही है।

हम–आप अपने को श्रीकृष्ण के वंशज कहलाने में गर्व करते हैं, अपने को अर्जुन भी मानते हैं किन्तु अभी तक हमारा ''मोह नष्ट नहीं हुआ। हमें अपने स्वधर्म की स्मृति की उपलब्धि नहीं हुई है।'' मालूम नहीं अर्जुन बनने में कितनी बार गीता का श्रवण कर समझना पड़ेगा।

साधक विष्णु की गदा इसलिए धारण करना चाहता है ताकि दुष्प्रवृत्तियों, आतंकी वृत्तियों, आततायिओं, जनता का शोषण करने वालों, अन्याय, अत्याचार एवं अनाचार को उस गदा के प्रहार से विदीर्ण करके पीड़ित प्रजा का रक्षण कर सके।

माँ दुर्गा को स्मरण करके महिषासुर मर्दिनी के खप्पर में इन असुरों के रक्त का भोग लगाना चाहता है। वह क्षात्रधर्म पालन के लिये कटिबद्ध होना चाहता है।

विगत सौ वर्षों में हमारे समाज को जागृत करने के लिये, सामाजिक चेतना की स्फूर्ति के लिये क्षत्रियत्व और क्षात्रधर्म की समझ देने के लिये जिन महापुरुषों ने अपना जीवन समर्पित कर दिया है, उन्हें स्मरणांजलि देना अपना कर्तव्य समझकर उन पुण्य श्लोक पुरुषों के नामों का स्मरण करना है तो सौराष्ट्र के स्वनाम धन्य स्व. कुमार हरभमजी राज मोरबी, स्व. पू. मनुभा बापु चेर, स्व. चन्द्रसिंह जी भाडवा दरबार साहब एवं स्व. हरिसिंहजी गढुला का अनायास स्मरण हो जाता है। राजस्थान के पुण्यश्लोक स्व. पू. तनसिंहजी, स्व. पू. आयुवानसिंहजी एवं स्व. पू. नारायणसिंहजी को कैसे भूला जा सकता है।

अंत में जगत नियंता से प्रार्थना है कि हमें स्वधर्म पालन का सामर्थ्य प्रदान करें।

सार– रीड पड़े रजपूत छुपे नहीं
दाता छुपे नहीं घर मांगन आए।
(रीड पड़े = आर्तनाद सुनकर)

(क्रमश:)

बलिदान की होड़

– गोपालसिंह राठौड़

एक कहावत है कि ''बेटा अपनी माँ एवं अपने भाई का विरोध तो कर सकता है लेकिन वह कभी उनका दुश्मन नहीं हो सकता'' इसी भावना की झलक 1576 के हल्दीघाटी के ऐतिहासिक युद्ध में देखने को मिलती है। मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के छोटे राजकुमार शक्तिसिंह किसी बात पर रूठकर मेवाड़ छोड़कर दिल्ली चले गये लेकिन उनके हृदय में बसा मातृभूमि, परिवार एवं भाईयों के प्रति प्यार व आदर बराबर हिलोरें मार रहा था। हल्दीघाटी युद्ध के दौरान जब शक्तिसिंह ने देखा कि भाई प्रताप को घायल अवस्था में युद्ध भूमि से सुनियोजित योजनान्तर्गत निकाला जा रहा है और मुगल सैनिक उनका पीछा कर रहे हैं तो उनका मातृभूमि एवं भातृत्व प्रेम उमड़ पड़ा और उन्होंने तुरन्त उनका पीछा किया और दोनों मुगल सैनिकों को मारकर प्रताप को सुरक्षित निकलने में मदद की उनके इस कदम से मुगल सेना के सेनापति नाराज भी हुए किन्तु शक्तिसिंह ने कोई परवाह नहीं की।

युद्ध के बाद गोगुन्दा में किसी बात को लेकर जब मुगल सेनापति मानसिंह और उनके बीच उग्र विवाद हो गया तो स्वाभिमानी शक्तिसिंह ने दिल्ली जाने के बजाए अपने पुत्रों, अपने परिवार और लश्कर के साथ पूर्वी मेवाड़ की ओर कूच कर दिया और मेवाड़ के अन्तिम छोर चम्बल नदी के किनारे भैंसरोड़गढ़ जाकर अपना आधिपत्य स्थापित किया। अकबर ने उन्हें वहाँ का शासक मान लिया और शक्तिसिंह ने भैंसरोड़गढ़ में रहकर ही अन्तिम सांस ली। वीर, साहसी और स्वाभिमानी शक्तिसिंह हल्दीघाटी के युद्ध में मुगल फौज के साथ आए, युद्ध भूमि में उपस्थित भी रहे किन्तु मातृभूमि के प्रति उमड़ रहे प्यार की भावना अन्य सभी कारणों पर भारी पड़ी और उन्होंने मेवाड़ी सेना के विरुद्ध तलवार चलाई हो ऐसा किसी प्रत्यक्षदर्शी या इतिहासकार ने वर्णन नहीं किया है।

महाराज शक्तिसिंह के स्वर्गवास के बाद उनका बड़ा बेटा 'भाण' उत्तराधिकारी बना। बादशाह ने उसका राजतिलक करवा भैंसरोड़गढ़ का राज्य उसे दे दिया। भाण का भाई अचलदास अपने छोटे भाई बल्लूसिंह के साथ मंदसौर आकर रहने लगा। शक्तिशाली होते ही दोनों भाई बादशाह के दरबार में पहुँचे वहाँ रामसिंह कछवाहा ने उन्हें बादशाह के सामने शस्त्र डालकर आत्मसमर्पण करने के लिये कहा किन्तु ऐसा करने के लिये दोनों भाई तैयार नहीं हुए और अपनी हठ पर अड़े रहे जिससे उनकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। जब महाराणा ने अचलदास और बल्लू का ऐसा साहस और दृढ़ता देखी तो उन्होंने अपना समझकर दोनों को मेवाड़ बुला लिया और अचलदास को देसूरी का पट्टा देकर सम्मानित किया इस प्रकार हल्दीघाटी युद्ध के बाद से सन् 1600 ई. तक इन 24 वर्षों में शक्तिसिंह के पुत्रों ने अपनी वीरता और साहस से पूरे पूर्वी मेवाड़ पर जिसमें मांडलगढ़ से मंदसौर और भीण्डर से भैंसरोड़गढ़ तक के क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया और इस अवधि में भीण्डर , मंदसौर, मांडलगढ़, बेगूं, देवलिया, जीरण आदि स्थानों पर सैय्यदों और अन्य आतताइयों से युद्ध करके उन्हें शिकस्त दी और अपनी धाक जमाई।

सन् 1600 ई. में 'ऊँटाले के युद्ध' में पुन: शक्तावतों का उल्लेख मेवाड़ के इतिहास में चमक उठता है और उन्हें रावत, राव की उपाधि जागीरें तथा मेवाड़ की फौज में लड़ने की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। ऊँटाले का युद्ध ऐतिहासिक घटना है जिसका उल्लेख कविराज श्यामलदास तथा गौरीशंकर औझा दोनों ने अपने-अपने ग्रंथों में किया है परन्तु ''सगतरासो'' में दिया युद्ध का वर्णन पूर्णतया इतिहास सम्मत है। इस युद्ध में बादशाह की ओर से शहजादा सलीम, मानसिंह लड़े थे दूसरी ओर महाराणा अमरसिंह की ओर से रावत जैतसिंह चूण्डावत एवं उनके साथी शक्तिसिंह के पुत्र भाण, अचलदास, बल्लू एवं उनके साथी सम्मिलित हुए। मेवाड़ के इतिहास ग्रंथों में इस युद्ध की भूमिका में चूण्डावतों और शक्तावतों की सेना के हरावल में रहकर युद्ध करने की प्रतिद्वंदता का उल्लेख हुआ है जो विश्व के इतिहास पटल पर अद्वितीय है।

महाराणा अमरसिंह के समय की घटना है उस समय ऊँटाले पर मुगलों का अधिकार था, हरावल की होड़ को लेकर शक्तावतों और चूण्डावतों में बहस हो गई। हरावल में रहना उस समय बड़ी इज्जत की बात समझी जाती थी। उस समय तक हरावल में चूण्डावत ही रहते आये थे लेकिन बाद में भाण, अचलदास, बल्लू, दलपत, शक्तावत काफी शक्तिशाली होकर उभर गए थे। अत: शक्तावतों ने हरावल में रहने का हक जताया। महाराणा अमरसिंह इस विवाद से दुविधा में पड़ गए। वे शक्तावतों और चूण्डावतों के आपस की लड़ाई से मेवाड़ की शक्ति और मातृभूमि को कमजोर नहीं होने देना चाहते थे, दोनों ही पक्षों को महाराणा बड़ी इज्जत की निगाह से देखते थे। अन्त में उन्होंने एक उपाय राजनैतिक दक्षता से सोचा और वे बोले हरावल में रहने का अधिकार (हक) उसी दल को मिलेगा जो ऊँटाले के गढ़ में सबसे पहले प्रवेश करेगा।

महाराणा की यह राय दोनों दल के योद्धाओं को पसन्द आई। दोनों ही दल उदयपुर से ऊँटाले के लिये कूच की तैयारियाँ करने लगे। शक्तावतों की टोली के मुखिया बल्लूसिंह थे। भरा हुआ चेहरा, चौड़ी छाती और रोबीली मूंछे उनके व्यक्तित्व में चार चांद लगाती थी। शेर जैसी चाल से चलते तो देखने वालों का मन मोह लेते, हमेशा मरने-मारने को तैयार रहते थे। अपने साथियों को लेकर वे ऊँटाले पहुँचे लेकिन जल्दी-जल्दी में ये लोग अपने साथ रस्सियाँ व निसैनियाँ लाना भूल गए। गढ़ की दीवार पर चढ़कर भीतर कूदने के लिये इनका होना जरूरी था। लाचार होकर बल्लूसिंह ने गढ़ के फाटक से ही भीतर घुसना तय किया और फाटक के किवाड़ों को तोड़ने के लिये अपने हाथी को आगे बढ़ाने के लिये उन्होंने महावत को ललकारा हाथी ने दो-तीन बार टक्कर मारी लेकिन किवाड़ों पर तीखे भाले लगे हुए थे इसलिये हाथी सही ढंग से टक्कर नहीं दे पा रहे थे। गढ़ की दीवार से मुगल सिपाही पत्थर, गोलियाँ और तीर बरसा रहे थे। बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ रहा था चारों ओर मौत दिखाई दे रही थी। दूसरी ओर सलूम्बर के जैतसिंह चूण्डावत के नेतृत्व में उनका दल भी ऊँटाले आ पहुँचा। मेवाड़ में जब भी महाराणा की गद्दी नशीनी होती थी चूण्डावतों के रक्त से सबसे पहले महाराणा को तिलक लगाया जाता था, फौज की हरावल में भी चूण्डावत ही रहते आये थे इस दल का नेता रावत जैतसिंह अपने युद्ध कौशल के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध था, वीरता उनमें कूट-कूट कर भरी थी, उनकी वीरता और साहस के सामने अच्छे-अच्छे सूरमाओं के छक्के छूट जाते थे। जब उन्हें पता चला कि शक्तावत किले के द्वार से गढ़ में प्रवेश का प्रयत्न कर रहे हैं तो उनका साहस और बढ़ गया और वे निसैनी लगाकर किले की दीवार पर चढ़ गए, लेकिन अचानक एक गोली उनकी छाती में लगी और वे धड़ाम से जमीन पर गिर पड़े लेकिन गिरते-गिरते उन्होंने अपने साथियों से चिल्लाकर कहा कि ''फौरन उनका सिर काटकर किले में फेंक दें'' उनके साथी हिचके, लेकिन जैसे ही उन्होंने हुंकार भर कर कहा कि-''मातृभूमि पर सर्वप्रथम बलिदान होने का स्थान मैं किसी दूसरे को नहीं लेने दूंगा, जल्दी करो मेरा सिर काटकर मातृभूमि के चरणों में समर्पित कर दो'' उनके आदेश की पालना हुई और उनके एक साथी ने भरे मन से उनका सिर काटकर मातृभूमि के चरणों में समर्पित कर दिया। उधर चूण्डावतों के आने की खबर जैसे ही बल्लूसिंह को मिली उन्होंने अपने साथियों को ललकारा और पूरी ताकत से हमला करने को प्रेरित किया लेकिन किले का दरवाजा टूटे बिना अंदर घुसना मुश्किल हो रहा था। तब कोई उपाय न देखकर वीर बल्लूसिंह ने अपने आत्म बलिदान का निर्णय लिया। वे फाटक के कीलों पर चढ़ गए और वहाँ पर अपनी पीठ अड़ा दी, फिर महावत से चिल्लाकर बोले कि हाथी को मेरे ऊपर हूल दे। इस दृश्य को देखकर सभी सैनिक अचंभित रह गए और कोई कुछ भी समझ नहीं पा रहा था इतने में बल्लूसिंह ने चिल्लाकर कहा ''आज मैं अपने रक्त से अपने बलिदान से मातृभूमि और मेवाड़ की भूमि का श्रृंगार करूंगा, मातृभूमि को अपने रक्त से सींचूंगा, आज प्रथम बलिदान से मुझे कोई नहीं रोक सकता है'' फिर गरजकर बोले ''महावत हाथी को मेरे ऊपर हूल दे'' महावत ने उदासी से लेकिन

(शेष पृष्ठ 26 पर)

जीवन्मुक्ति की प्राप्ति

– स्वामी यतीश्वरानन्द

आध्यात्मिक मुक्ति का आदर्श :

एक आदमी एक पादरी के यहाँ गया। द्वार पर उसकी भेंट पादरी की छोटी कन्या से हुई। उसने कहा, ''पिताजी घर पर नहीं हैं।'' उसके बाद एक आत्मविश्वास भरी मुस्कुराहट के साथ उसने आगे कहा, ''लेकिन यदि आप मुक्ति के बारे में कुछ पूछना चाहते हैं, तो मैं आपको सब कुछ बता सकती हूँ। मुक्ति की सारी योजना मुझे पता है।''

मुक्ति कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो बोलने से मिल सकती हो। वह, अधिकांश लोग जैसा सोचते हैं, उससे अधिक गहरी है। उसका सम्बन्ध आत्मा के वास्तविक स्वरूप तथा उसकी चरम नियति से है। प्रत्येक धर्म में मुक्ति की अपनी एक अवधारणा है, लेकिन वे सभी इस बात में एकमत हैं कि वह पूर्ण आनन्द की अवस्था है, जिसे जीव मृत्यु के बाद प्राप्त करता है। प्रश्न यह है कि इस अवस्था की उपलब्धि कैसे की जाये? यहूदी धर्म के मतानुसार पूर्ण नैतिक जीवनयापन करने से उसकी प्राप्ति हो सकती है। इसमें ईसाई धर्म एक शर्त का संयोग कर देता है : यदि व्यक्ति को ईसा मसीह के एकमात्र त्राणकर्ता होने में विश्वास हो तो। उसे विश्वास है कि अपनी मृत्यु द्वारा ईसा मसीह ने मानव जाति को आदिपाप के कलंक से मुक्त कर दिया। इस्लाम धर्म इसे अस्वीकार करता है। उसके अनुसार परित्राण करने का अधिकार एकमात्र भगवान् को है और मुहम्मद को अन्तिम पैगम्बर स्वीकार करना उसके लिये बिल्कुल अनिवार्य है। हिन्दू धर्म परित्राण को मुक्ति अथवा मोक्ष कहता है। मुक्ति की खोज मानव जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

मुक्ति क्या है? हम चार प्रकार की मुक्ति की बात सुनते हैं : अभाव से मुक्ति, भय से मुक्ति, बोलने की स्वतंत्रता और उपासना की स्वतंत्रता। लेकिन कितनी ही आवश्यक होते हुए भी, ये सभी मुक्तियाँ आंशिक मुक्तियाँ हैं। इन सबका सम्बन्ध मानव के केवल सामाजिक जीवन से ही है। सभी आधुनिक प्रजातंत्रों में नागरिकों को ये स्वतंत्रताएँ प्राप्त हैं। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि इनसे आत्मा को मुक्ति मिले। मानवात्मा सहजात प्रवृत्तियों, भावनाओं और आस्थाओं द्वारा आबद्ध है। समाज से सभी आवश्यक स्वतंत्रताएँ प्राप्त होते हुए भी जब तक मानव यह अनुभव नहीं करता कि वह अन्दर से मुक्त है, तब तक उसे मुक्त पुरुष कैसे कहा जा सकता है? इससे अधिक कुछ और आवश्यक है। हम आत्मा हैं, यह आभास होने पर ही वास्तविक स्वतंत्रता की लालसा हममें जाग्रत होती है। तभी वास्तविक आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ होगा। हमारे अपने प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आध्यात्मिक जागरण का प्रथम लक्षण है। तब हम यह आविष्कार करते हैं कि हम न तो देह हैं और न मन, बल्कि चेतना के केन्द्र, आत्मा हैं।

उच्चतर आध्यात्मिक स्वातंत्र्य की यह धारणा क्यों पैदा होती है? आत्मा के परमात्मा के साथ सम्बन्ध की चेतना इसका कारण है। जैसा कि स्वामी विवेकानन्दजी ने संकेत दिया है– प्रत्येक मानव में मुक्ति की लालसा विद्यमान है। लेकिन सामान्य लोगों में यह लालसा भोग की स्वतंत्रता अथवा राजनैतिक स्वातन्त्र्य जैसी सांसारिक दिशा ले लेती है। परमात्मा के साथ एकत्व प्राप्त कर सभी बन्धनों से आत्मा की मुक्ति वास्तविक स्वातन्त्र्य है। केवल कुछ बिरले लोगों में ही आत्मा की परमात्मा के प्रति तीव्र लालसा पैदा होती है।

अनादि अविद्या के कारण जीव, ईश्वर या ब्रह्म या अखण्ड चैतन्य से पृथक बना रहता है। जीव भाव या परमात्मा से पृथकत्व का बोध सदा दुःख, बन्धन और ससीमता का कारण होता है। ब्रह्मसाक्षात्कार अथवा भगवत्प्राप्ति के द्वारा जीवत्व से छुटकारा पाये बिना कोई भी मुक्त नहीं हो सकता। जीवत्व के कारण आसक्ति तथा विभिन्न प्रकार के तथाकथित मानवीय प्रेम और घृणा उत्पन्न

होते हैं, जिनका परिणाम केवल दुःख एवं कष्ट ही होता है। जब तक जीव अपने वास्तविक नित्य स्वरूप का साक्षात्कार नहीं कर लेता, तब तक उसे जन्म और मृत्यु के चक्कर से गुजरना पड़ता है। हम मुक्ति और निर्भयता चाहते हैं। हम देह और मन की सीमाओं को तोड़कर मुक्त होना चाहते हैं। अपनी विभिन्न इच्छाओं, वासनाओं और पाशविक तृष्णाओं से आसक्त रहते तक हम यह कभी नहीं कर पाएँगे। देह और मन के साथ– स्वयं तथा दूसरों के देह और मन के साथ–आसक्ति का त्याग किये बिना आत्मसाक्षात्कार प्राप्त नहीं किया जा सकता।

सच्ची मुक्ति :

यह आवश्यक है कि हमें मुक्ति की सही अवधारणा हो। क्या हम इन्द्रियों (के भोग) की स्वतंत्रता चाहते हैं, उनकी खुली छूट चाहते हैं या इन्द्रियों से मुक्ति चाहते हैं? मुक्ति का यथार्थ अर्थ क्या है? क्या यह मन को भोगों के पीछे भागने देने, इन्द्रियों का गुलाम होने की स्वतंत्रता है? क्या इस तरह अपनी कब्र स्वयं खोदना मुक्ति है? अथवा सभी इच्छाओं को नियन्त्रित करना, इच्छाओं के स्वामी बनना तथा इन्द्रियों एवं उनकी लालसाओं से मुक्त होना स्वाधीनता है? इन्द्रियों की स्वतंत्रता, अपनी निम्न वासनाओं की पूर्ति करने की स्वतंत्रता के फलस्वरूप दुःख होता है। वास्तविक मुक्ति सभी दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति है और यह आत्मा को वासनाओं एवं इन्द्रिय विषयों से निवृत्त करने पर ही सम्भव है। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द कहते हैं :

'वेदान्त के ईश्वर विषयक सभी विचारों के मूल में पूर्ण मुक्ति एवं स्वाधीनता से उत्पन्न परमानन्द तथा नित्य शान्ति रूप धर्म की उच्चतम धारणा विद्यमान है। संपूर्ण मुक्त-भाव से अवस्थान–कुछ भी उसको बद्ध नहीं कर सकता; वहाँ प्रकृति नहीं है; किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं है; ऐसा कुछ भी नहीं है, जो उसमें किसी प्रकार का परिणाम उत्पन्न कर सके। यह मुक्त भाव तुम्हारे भीतर है मेरे भीतर है और यही एकमात्र यथार्थ स्वाधीनता है।'

आध्यात्मिक दृष्टि से मुक्ति का अर्थ एक ऐसी स्थिति से है, जिसमें बाधा या रुकावट के अभाव का बोध ही नहीं, बल्कि ऐसी उच्चतर चेतना का उदय भी है, जिसमें आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप, जगत् की चरम सत्ता–पूर्ण परमात्मा की अनुभूति करती है। संसार के सभी धर्मों में इस मुक्ति की, जिसे वे जीवन का चरम लक्ष्य समझते हैं, कुछ न कुछ अवधारणा है। हम जिस मुक्ति की चर्चा कर रहे हैं, उसको धार्मिक साहित्य में विभिन्न नाम दिये गये हैं। ईसाई धर्म में उसे साल्वेशन और रिडम्पशन (*Salvation And Redemption*) अर्थात् त्राण और उद्धार कहा जाता है। बौद्ध धर्म, निर्वाण अथवा कामनाओं और स्वार्थपरक कर्म की निवृत्ति कहता है। हिन्दू धर्म जीव के समस्त दुःखों और बन्धनों से संपूर्ण और आत्यन्तिक निवृत्ति की बात करता है तथा मुक्ति, मोक्ष, अपवर्ग, निःश्रेयस जैसे शब्दों का उच्चतम आध्यात्मिक लक्ष्य का निर्देश करने के लिये प्रयोग करता है। संख्या दर्शन में तापत्रय से जीव की मुक्ति को मुक्ति कहा गया है, पर वेदान्त कहता है कि उसका अर्थ परमानन्द की प्राप्ति भी है।

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक, ये तीन तापत्रय कहलाते हैं। शारीरिक व्याधि, लोभ, वासना और त्रुटियों के द्वारा होने वाले कष्ट आध्यात्मिक ताप हैं। हिंस्र पशुओं, दुष्टजनों आदि प्राणियों के द्वारा उत्पन्न दुःख आधिभौतिक ताप कहलाते हैं। शीत, ग्रीष्म, वायु, वृष्टि, भूकम्प जैसी दैवी शक्तिओं, जिन पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है, के द्वारा होने वाले दुःख आधिदैविक कहलाते हैं। संस्कृत शब्द 'दुःख' का अर्थ सामान्य शारीरिक और मानसिक दुःख से कुछ अधिक है। उसका अर्थ बन्धन या ससीमता भी है। वेदान्त के अनुसार जीव असीम पूर्ण चैतन्य और आनन्द स्वरूप है। लेकिन अपनी व्यावहारिक अवस्था में वह देह, इन्द्रियों और मन के बन्धनों के कारण ससीम हो गया है। जीव को समस्त बन्धनों से मुक्त करना लक्ष्य है, जिसका अर्थ गुणों के अथवा विश्वजनीन शक्तियों के प्रभाव से मुक्त होता है।

जब तक मानवात्मा बद्ध है, तब तक वह वास्तविक सुख प्राप्त नहीं कर सकती। सुख बाह्य पदार्थों में नहीं है। वह मानव की वास्तविक आत्मा का स्वरूप है। अविद्या

आत्मा के वास्तविक स्वरूप को आवृत कर देती है। अत: अविद्या ही सबसे बड़ा बन्धन है। अविद्या अहंकार को उत्पन्न करती है। अहंकार राग, द्वेष और भय को जन्म देता है। ये सब आत्मा के बन्धन हैं और उसको उसके स्वरूपगत अनन्त आनन्द का अनुभव नहीं करने देते। लेकिन मानव के विकास-क्रम में एक अवस्था ऐसी आती है, जब जीव अपनी अनादि निद्रा से जागकर अपने बन्धन के बारे में सचेत होता है। तब वह अपनी वास्तविक आत्मा का साक्षात्कार कर आत्यन्तिक मुक्ति की कामना करता है।

लेकिन हममें से अधिकांश इस सच्ची मुक्ति को आन्तरिकता से नहीं चाहते। हम अपने वर्तमान ससीम अस्तित्व व उसकी परिस्थितियों से संतुष्ट रहते हैं। कारखानें के एक युवा श्रमिक की एक कथा है। उसे सरकारी पागलखाने में भर्ती करना पड़ा था। कुछ सप्ताह बाद उसका एक साथी श्रमिक उसे मिलने आया और उससे पूछा :

''कहो, कैसे हो?''

''बहुत अच्छा हूँ।''

''जान कर प्रसन्नता हुई। अब तो तुम शीघ्र ही काम पर वापस आ जाओगे ना।''

''तुम्हारा क्या मतलब? इस बड़े सुन्दर मकान और इस सुन्दर बगीचे को छोड़कर पुन: कारखानें में काम पर जाना। तुम क्या मुझे पागल समझते हो?''

बहुत से लोग आध्यात्मिक जीवन के बारे में ऐसा ही सोचते हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थ पर और अपवित्र जीवन से इतने संतुष्ट रहते हैं कि उच्चतम आध्यात्मिक मुक्ति के लिये प्रयत्न को वे निरा पागलपन समझते हैं।

गुणों का बन्धन :

हमारे भीतर और बाहर तीन विश्वजनीत शक्तियाँ काम कर रही हैं : अंधकार, प्रमाद और मोह की जड़ात्मक शक्ति तमस्:, काम, लोभ और सांसारिक क्रियाशीलता की तनावात्मक और वासनायुक्त शक्ति रज्स; और प्रेम एवं ज्ञान की सुखप्रदायक, समतायुक्त शक्ति सत्त्व। सत्त्व कल्याणकारक है क्योंकि वह मन को शुद्ध और तेजस्वी बनाता है। तमोगुण की अन्धकारमय प्रवृत्तियों से अभिभूत होने वाले विकास के क्रम में निम्नगति को प्राप्त करते हैं; रजोगुण द्वारा परिचालित होने वाले लोग निम्न अथवा ऊर्ध्वगामी हुए बिना सारे जीवन संघर्ष करते रहते हैं, जैसा अधिकांश लोगों में होता है। लेकिन सत्त्व की संतुलित समता में प्रतिष्ठित लोग उच्च से उच्चतर आरोहण करते हुए परमात्मसत्ता का साक्षात्कार करते हैं।

लेकिन सत्त्व भी जीव को ज्ञान के विस्तार तथा सूक्ष्म सुख में आसक्त कर बन्धन में डालता है। पवित्रता, भक्ति, करुणा, संयमादि सात्त्विक समत्व के गुण सत्य का साक्षात्कार करने में सहायक होते हैं, लेकिन सत्त्व स्वयं चरम सत्य नहीं है। आत्मसाक्षात्कार, अविद्या के समस्त बन्धनों से आत्मा की आत्यन्तिक मुक्ति, चरम लक्ष्य है। मात्र धर्माचरण और संयम उच्चतम आध्यात्मिक अर्थों में मुक्ति के लिये पर्याप्त नहीं हैं।

श्रीरामकृष्ण एक धनी व्यक्ति की कहानी सुनाया करते थे, जिसे जंगल से गुजरते समय तीन डाकुओं ने पकड़कर लूट लिया। तब पहले डाकू ने अपने साथियों से कहा, ''इसे मार डालो।'' दूसरे ने कहा, ''मारने से कोई फायदा नहीं है; इसे कसकर बाँधकर जंगल में पड़े रहने दो।'' वे लोग ऐसा करके चले गये। लेकिन तीसरा डाकू लौट कर आया और उसे बन्धन मुक्त करके जंगल से बाहर निकाल कर लाया। उसने उसे सलाह दी, ''उस रास्ते से जाओ, तुम शीघ्र घर पहुँच जाओगे।'' धनवान व्यक्ति ने कृतज्ञ होकर कहा, ''लेकिन आप भी मेरे साथ चलिए, हमें आपका हमारे घर में आदर-सत्कार करने में प्रसन्नता होगी।'' किन्तु डाकू ने कहा, ''यह नहीं हो सकता। मैं डाकू हूँ और यदि मैं नगर में जाऊँगा, तो पुलिस मुझे पकड़ लेगी।''

ठीक इसी तरह तमस् हमें नष्ट करता है, रजस् हमें सांसारिक बन्धनों में आबद्ध करता है और सत्त्व हमारे मुक्ति की स्पृहा पैदा करता है। सत्त्व पवित्रता, करुणा आदि गुणों को जन्म देता है, जो परमात्मा की दिशानिर्देश करते हैं, लेकिन जीव को क्रमश: ऊपर उठना चाहिए। तीन गुणों की तुलना ब्रह्म रूपी छत तक जाने वाली सीढ़ियों से भी की जा सकती है। सत्त्व छत तक जाने वाली सीढ़ी का अन्तिम

(शेष पृष्ठ 32 पर)

हैप्पी मैन बनिए एंग्रीमैन नहीं

– मुनिश्री चन्द्रप्रभ

दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कुछ अच्छाइयाँ लेकर आता है तो कुछ बुराइयाँ भी। अच्छाइयाँ जीवन में जीने के लिये होती हैं और बुराइयाँ जीतने के लिये। अच्छाइयों को जीना और बुराइयों पर विजय पाना ही इन्सान की सबसे बड़ी आत्मविजय है।

इन्सान की बुराइयों और कमजोरियों में एक सबसे बड़ी बुराई और कमजोरी है इंसान के जीवन में पलने वाला गुस्सा। यह एक ऐसी जन्मजात कमजोरी है न केवल अपन इंसानों में पाई जाती है, बल्कि जीवजन्तु और जानवर भी गुस्सा करते हुए देखे जा सकते हैं। हर कोई व्यक्ति गाय की तरह सीधा ही दिखाई देता है, लेकिन थोड़ा-सा छेड़ा कि गाय का स्वभाव जाता रहता है और व्यक्ति सांड बन जाता है। वह सांड की तरह सींग मारने लगता है।

गुस्सा एक ऐसी बीमारी है जिसे हम अन्तर्राष्ट्रीय बीमारी कह सकते हैं। यह केवल सामान्य को ही पैदा नहीं होता, सन्तों महन्तों को भी नहीं छोड़ता। यह न गरीब को छोड़ता है न अमीर को। गुस्से का धन से कोई सम्बन्ध नहीं है, शिक्षा से इसका कोई वास्ता नहीं है। पद-वद का इससे कोई लेन-देन नहीं है। गुस्से का जब अन्धड़ उठता है तो सन्तों, देवों और महापुरुषों तक को अपनी चपेट में ले लेता है। लक्ष्मण का त्याग राम की तरह ही महान था, किन्तु लक्ष्मण राम की तरह सम्मान न पा सका। आखिर कारण क्या? कारण है लक्ष्मण का गुस्सा। राम का धैर्य ही राम की सबसे बड़ी विशेषता है और लक्ष्मण का गुस्सा ही लक्ष्मण की सबसे बड़ी कमजोरी है। राम, कृष्ण, महावीर ये सब धैर्य और शान्ति के प्रतीक हैं। रावण, कंस और गौशालक ये सब अहंकार और गुस्से के प्रतीक हैं। दुर्वासा-ऋषि अनेक सिद्धियों के मालिक थे। उन्हें इतने जबरदस्त मंत्र मालूम थे जिनका प्रयोग करने पर कुन्ती को पांच पुत्र मिल गए। इतने महान सिद्ध योगी और महर्षि होने के उपरान्त दुनिया में दुर्वासा का नाम नहीं लिया जाता। क्या हम जानते हैं इसका कारण क्या है? इसका कारण है दुर्वासा का गुस्सा। इस दुनिया में जब भी किसी का नाम आदरपूर्वक लिया जाएगा तो उसी का नाम लिया जाएगा जो प्रेम, शान्ति, सहिष्णुता, क्षमा और उदारता का मालिक होगा। भले ही हम सब लोग राम, कृष्ण या महावीर न बन पाते हों परन्तु उनके शान्ति और धैर्य से प्रेरित होकर हम लोग अपने जीवन में शान्ति का सुकून अवश्य ला सकते हैं।

भारत में महाभारत छिड़ा। महाभारत क्या है? गुस्से और उपेक्षा का परिणाम। हिरोशिमा में परमाणु बम के विस्फोट हुए। ये विस्फोट वास्तव में अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमेन के गुस्से का परिणाम था। पूरा हिरोशिमा ध्वस्त हो गया, तब आईंस्टीन खूब रोया। उनका मानसिक संतुलन बिगड़ गया। उन्हें क्या पता था कि मनुष्य की पशुता, पशु से भी ज्यादा भयंकर होती है।

गुस्सा वास्तव में ऐसी आग है जो सर्वस्व जला बैठती है। हमारा दो पल का गुस्सा भी हमारा पूरा कैरियर चौपट कर देता है, रिश्तों में दरार डाल देता है। गुस्सा करना तो टिड्डियों के छाते में पत्थर मारने की तरह है। मधुक्खियों के छाते में पत्थर मारो तो मधुमक्खियाँ काटती हैं, पर शहद मिलने की भी गुंजाइश रहती है, पर टिड्डियों के छाते में पत्थर मारोगे तो खुद के लहुलुहान होने के अलावा कुछ नहीं होने वाला है।

एक महानुभाव अस्पताल में भर्ती थे। मैंने उनके बच्चे से उसके पिता के बारे में पूछा तो वह कहने लगा मेरे पापा ने एक टिड्डी को मार दिया था, मैं थोड़ा चौंका। एक टिड्डी को मारने से पाप तो लगता है, लेकिन आदमी अस्पताल कैसे पहुँच जाता है? बच्चे ने राज खोलते हुए कहा-मेरे पापा ने मारी तो एक ही टिड्डी थी, लेकिन उस टिड्डी के दो सौ रिश्तेदार आ गए थे।

गुस्सा है ही ऐसी चीज, जो अकेला नहीं आता जब भी आता है तो अपने पूरे परिवार के साथ आता है।

अहंकार गुस्से का पिता है तो उपेक्षा उसकी माँ। हिंसा उसकी पत्नी है तो वैर-विरोध उसके जुड़वां भाई। दुख और प्रायश्चित उसकी संतानें हैं। निंदा, चुगली उसकी नकचढी बहने हैं। गाली, गलौच, थप्पड़, मुक्के, धक्के उसके पोते पोतियाँ हैं। परिवार तो उसका बहुत भारी भरकम है। जो गुस्सा करते हैं उनको ज्यादा पता है।

गुस्सा इतना ही खतरनाक है जितना कि नशा करना, नशे में आदमी अपना होश-हवास खो बैठता है और गुस्से में भी व्यक्ति को सुधबुध नहीं रहती। लोग भूल जाते हैं सारी मान-मर्यादा। गुस्से में पिता अपने बेटे को गधा, नालायक, सूअर की औलाद जाने क्या-क्या अपशब्द कह बैठता है। पुत्र को पिता के प्रति गुस्सा आ जाय तो वह पिता के सामने किस बदतमीजी से पेश आता है, शायद बताने की जरूरत नहीं है। राम जैसा दिखने वाला सीधा शरीफ इंसान भी रावण का मुखौटा पहन बैठता है। सास-बहू, देवरानी-जेठानी, भाई-भाई के बीच दूरी और दरार का कारण पैसा कम होता है, गुस्सा ज्यादा होता है। गुस्सा करना सरासर आतंक फैलाना है। गुस्सा पाप है, अपराध है, अमानवीय है, अवैधानिक है। गुस्सा दंगा फसाद कराने वाला है। इसकी शुरुआत भले ही जीरो (0) से हो लेकिन अन्त अनन्त है। यह स्वास्थ्य का दुश्मन है, पारिवारिक प्रेम का हंता है। सामाजिक मूल्यों का शत्रु है। ऊपर से भले ही लगता हो कि इसके कुछ फायदे मिले हैं पर गुस्सा कर करके आज तक कोई भी बाप अपने बेटे को सुधार नहीं पाया, अधिकारी अपने कर्मचारी (साथी सहयोगी) की क्षमता को नहीं बढा पाया। कोई नेता देश को या प्रमुख संस्था को (संगठन को) नहीं सुधार पाया। दुनिया में बदलाव आता है तो वह प्रेम से अपनत्व से ही आता है, शान्ति के सेतु से आता है। भाईचारे या बन्धुत्व के भाव से आता है। लोगों के पास तो हँसने के लिये वक्त नहीं है, पता नहीं दुनिया में कौन बेवकूफ होगा जो गुस्से के लिये वक्त निकालेगा।

हम समझें गुस्से से होने वाली हानि को। गुस्से से गुर्दे के दोनों ओर रहने वाली ग्रन्थियों से हारमोन का स्राव होता है। इससे रक्तचाप (बी.पी.) तेज हो जाता है। नाड़ी और हृदय की गति दुष्प्रभावित हो जाती है, भूख मर जाती है। तभी तो जब भी किसी को गुस्सा आता है तब वह सबसे पहले खाना छोड़ देता है। लड़कियाँ गुस्से में होती हैं तो अमुमन भोजन से रूठ जाती हैं। गुस्से में हमारा टेम्प्रेचर तेज हो जाता है। गुस्सा जब भी आता है अपने से कमजोर पर ही आता है। कोई किसी पहलवान पर गुस्सा नहीं करता। बीवी अपना गुस्सा धोबी पर निकालती है तो धोबी गधे पर। पति अपना गुस्सा पत्नी पर निकालता है तो पत्नी अपने बच्चों पर।

गुस्सा जब भी आता है तो दूसरों की गलतियों पर आता है, खुद की गलतियों पर गुस्सा नहीं आता। खुद की गलती पर गुस्सा आ जाए तो गीता पढ़ने की जरूरत ही नहीं रहेगी। खुद का भला खुद ही हो जाए। लोग हमेशा दूसरों की गलतियों पर गुस्सा करते हैं। मैं तो कहूँगा कि खुद से गलती हो जाए तो कभी खुद के गाल पर दो चाँटे मारा करो। दो-चार बार खुद को दंडित करोगे तो खुद से गलतियाँ होना बन्द हो जायेंगी। जब भी हमसे गलती होना मुमकिन हो तो जरा सोचो सामने वाला भगवान का अवतार नहीं है उससे भी गलती होना सम्भव है। किसी से गलती होने पर हो-हल्ला करके घर का (संस्था का) माहौल मत बिगाड़िए। जो काम समझाइश और शान्ति से निपट सकता है उसके लिये गलतियाँ मत ढूंढिए, गलतियाँ मत निकालिए। जो काम सूई से हो सकता है वहाँ कटार चलाना बेवकूफी है। गुस्सा कोई सामान्य चीज नहीं है, वह बड़ा बेशकीमती है, इसे बात-बात में करना उचित नहीं है। बात-बात में गुस्सा करने वाले की इज्जत तो उसकी घर वाली भी नहीं करती।

गुस्सा परमाणु बम है। इसके प्रयोग से प्रेम और शान्ति के सारे दरवाजे बन्द हो जाते हैं। हमारा गुस्सा कब अनियन्त्रित हो जाए उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। हमें अपने गुस्से को जीतना चाहिए उसे सकारात्मक दिशा दे देनी चाहिए।

कुछ ऐसे सूत्र और नियम हैं जो बताना चाहूँगा। ये सूत्र हम सभी के लिये कल्याण-मित्र की तरह उपयोगी हो सकते हैं -

1. गुस्से के दौरान तात्कालिक प्रतिक्रिया न करें। गुस्से की सबसे अचूक औषधि है-धैर्य। कुछ मिनट का धैर्य रखने में सफल होने का मतलब है आने वाले कई घंटों व दिनों को शान्तिपूर्ण बनाने में सफलता। अधीरता और गुस्सा दोनों भाई बहन हैं। गुस्से में आदमी उतावला हो जाता है, असंतुलित हो जाता है, धैर्य रखने में सफल हुए तो भाषा शान्त और मधुर हो जाएगी, व्यवहार में संतुलन बना रहेगा। गुस्सा एक तात्कालिक पागलपन है। यह वह अग्नि है जिसमें अगर तात्कालिक प्रतिक्रिया का घी न डाला जाए तो गुस्से की उम्र कम हो जाती है।

भगवान श्रीकृष्ण के जीवन से प्रेरणा ले सकते हैं। शिशुपाल उनका अपमान पर अपमान करता चला जाता है। किन्तु श्रीकृष्ण बहुत शान्त रहते हैं, धैर्यपूर्ण रहते हैं। यहाँ कृष्ण के अग्रज बलराम शिशुपाल के प्रति आगबबूला हो उठते हैं लेकिन श्रीकृष्ण अपने धैर्य और शान्ति को बरकरार रखते हैं। वे शिशुपाल की 99 गलतियों को माफ करने का बड़प्पन दिखाते हैं। 100 गलतियों की लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन करने पर वे उसे दंडित करते हैं। श्रीकृष्ण 99 गलतियाँ माफ कर सकते हैं हम 9 गलतियाँ तो माफ करें। हम कितने विचित्र हैं कि कृष्ण के तो बालस्वरूप की पूजा करते हैं पर माखन चोर को माखन-मिश्री चढाते हैं और अपने ही घर में जाये-जन्में भगवान के बालस्वरूप की भर्त्सनाएँ करते हैं, हम डाँटते-डपटते हैं। हमारी नासमझी यह होती है हम बड़ों के बराबर बच्चों को रख लेते हैं। बच्चों की गलतियाँ माफ करने में ही बड़ों का बड़प्पन है। गुस्से पर नियंत्रण करने का पहला अचूक साधन है-कि तात्कालिक प्रतिक्रिया से बचें।

2. गुस्से की प्रकृति को शीतल करें। जैसे ही गुस्सा आए, आप तत्काल एक गिलास ठंडा पानी पिएं। दूध के उफनने पर हम ठंडे पानी के छींटे डालते हैं। गुस्सा आने पर ठंडा पानी पीना भी उसी प्रकार लाभदायक है। एक और फॉरमूला भी है कि आप यदि खड़े हैं तो बैठ जाइए, बैठे हैं तो लेट जाइए। गुस्से की प्रकृति रिलेक्स हो जाएगी।

3. गुस्सा प्रकट करना हो तो मुहूर्त तलाशिए। गुस्सा कोई सामान्य वस्तु नहीं है कि चिल्लर में उसे खर्च कर दिया जाए। अपने पास चौघड़िये का कोष्टक दिखाने वाला एक कागज रखिए, चौघड़िया देखकर अपना गुस्सा प्रकट कीजिए। सम्भव है इससे आपका गुस्सा आपके लिये सकारात्मक परिणाम ले आए।

4. गुस्सा छोड़ने का उपवास कीजिए-जिन्हें गुस्से की आदत है उन्हें सप्ताह में एक बार या महिने में दो बार गुस्सा न करने का उपवास करना चाहिए। इससे देवी-देवता तो प्रसन्न होंगे ही आप खुद देवत्त्व के मालिक बन जाएँगे।

5. जीवन में शान्ति को मूल्य दें-जीवन में अगर शान्ति चाहिए तो जीवन में शान्त रहने की भी आदत डालिए। भगवान बुद्ध के पास उनका कोई विरोधी पहुँचा। उसने बुद्ध का विरोध करते हुए उन्हें गालियाँ दीं। बुद्ध चुपचाप सुनते रहे। जब गालियाँ देने वाला शान्त (चुप) हुआ तो बुद्ध ने मुस्कुराते हुए कहा-महानुभाव जरा यह बताओ कि यदि तुम्हारे घर कोई मेहमान आए, तुम उसे खाना परोसो पर अगर वह खाना स्वीकार न करे तो तुम्हारा भोजन किसके पास रहेगा। वह बोला-मेरे पास ही रहेगा। बुद्ध बोले-मित्र! अभी तुमने जो कुछ मुझसे कहा उसे मैंने स्वीकार नहीं किया, इसलिए तुम्हारी गालियाँ तुम्हीं को मुबारक। बुद्ध की यह घटना हमें विपरीत घडियों में शान्त रहने की प्रेरणा देती है। शान्ति सफलता की पहली सीढी है। हम अपनी आती जाती सांसों का ध्यान करें, उन्हें गहरा करें और गहरी सांसों पर ध्यान धरें और एक बात को मूल्य दें कि मेरा मन शान्त संतुलित और प्रसन्न होता जा रहा है स्वभाव शान्त होता जाए।

6. सकारात्मक दृष्टि रखें-दुनिया का स्वभाव तो कुत्ते की पूंछ जैसा होता है। पूंछ को कितना भी सीधा कर दो वह टेढी होने में एक सैंकण्ड भी नहीं लगाती। परिचित या अपरिचित सदा अच्छे ही रहें यह जरूरी नहीं है। चार बर्तन साथ रहते हैं तो कभी न कभी खड़कते भी हैं। कभी-कभी दूसरे की बात हमें अच्छी नहीं लगती बुरी लग जाती है तो कभी हमारी बात किसी दूसरे को असहज लग सकती है। वातावरण दूषित होने पर उससे बाहर निकलने का सबसे

कारगर उपाय है-आप अपनी दृष्टि सोच और व्यवहार को सकारात्मक रखें। यह विपरीत वातावरण पर विजय प्राप्त करने का अचूक साधन है। गलती तो सास से भी हो सकती है और बहू से भी, पत्नी से भी हो सकती है और पुत्र से भी। दोनों ही परिस्थितियों में स्वयं को सहज और शान्त रखना जीवन की सबसे बड़ी सफलता है।

7. वाणी में मिठास का शरबत घोलिए-हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, तमिल, तेलगु...... आदि सभी भाषाएँ आप बोलते हैं, पर क्रोध-मुक्ति की बारहखड़ी हमें मिठास और सम्मानपूर्वक बोलने की प्रेरणा देती है। इष्ट बोलिए, मिष्ट बोलिए, शिष्ट बोलिए, सम्मानपूर्वक बोलिए अर्थात् प्रिय बोलिए, मधुर बोलिए, अपनी भाषा में कृपया, धन्यवाद और क्षमा कीजिए जैसे शब्दों की चासनी घोलिए। टेढा बोलेंगे तो ध्यान रखें, याद रखें-टेढे के बदले में टेढापन ही लौटकर आता है। रेल यात्रा के समय डिब्बे में, एक केबिन में कुछ मोटे ताजे लोग बैठे थे। एक व्यक्ति को उन्हें देखकर मजाक सूझी। उसने टोंट कसा-यह डिब्बा क्या केवल हाथियों के लिये है। एक सेठ ने वापिस प्रतिक्रिया करते हुए कहा-नहीं गधे भी बैठ सकते हैं। टेढा बोलने पर टेढा ही सुनने को मिलेगा। यदि सीधा बोलोगे तो सीधापन लौटकर आएगा। प्रकृत्ति तो केवल लौटाती है।

8. हर हाल में मस्त रहिए-सुबह उठते ही अपने आपसे पूछिये कि सुखी राम बनना चाहते हो या दुखी राम? मन जो जवाब दे उसे तत्काल अपने जीवन पर ढाल लीजिए और सुखीराम बनने के लिये अपने आपको मस्त स्वभाव का बना लीजिए। मुँह सुजाकर बैठने की बजाए मुस्कुराते हुए बैठने की आदत डालिए। अच्छा हो यदि अपने स्वभाव को टेढा बनाने की बजाए विनोदी बना लें। एक पति अपनी पत्नी को झिड़कते हुए कह रहा था-भगवान जब बुद्धि बाँट रहे थे तब तुम क्या कर रही थी? पत्नी भी विनोदी स्वभाव की थी, तपाक से बोली-तुम्हारे साथ फेरे ले रही थी। यदि आप गुस्से की सन्तान बन चुके हैं तो निराशा हताशा या मायूस होकर बैठने की बजाए स्वयं को खुशी का दोस्त बना लें और मस्त जीवन के मालिक बन जाएँ। ''*Smile More Happy Sure*'' इस सूत्र को अपनी जिन्दगी में शामिल करें। आजकल गुस्सा हर किसी पर हावी हो गया है। लोगों की और हमारी भी सहनशीलता दिन ब दिन कम होती है जा रही है। गुस्से पर काबू न कर पाने के कारण रोज आतंकवादी हमले हो रहे हैं, घर टूट रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी के लिये मेरा यही संदेश है- एंग्रीमैन नहीं हैप्पीमैन बनो।

कहत चन्द्रप्रभ भाई लोगो!
गुस्से को दो खुशी की झप्पी।
और बना लो लाइफ को हैप्पी।।

(संबोधि टाइम्स से साभार)

पृष्ठ 19 का शेष

बलिदान की होड़

जोश के साथ हाथी के माथे पर जोर से अंकुश मारा उससे हाथी को गुस्सा आ गया, उसने बल्लूसिंह के शरीर को जोर से टक्कर मारी, इस टक्कर से लोहे के भाले बल्लूसिंह के शरीर के आर-पार हो गए, किवाड़ खण्ड-खण्ड हो गए और वीरता और बलिदान के पुजारी बल्लूसिंह की देह के साथ-साथ जमीन पर गिर पड़े, फाटक के गिरते ही शक्तावतों की फौज किले में घुस गई और मुगलों से भयंकर लड़ाई छिड़ गई। अन्त में मुगलों की हार हुई वे किला छोड़कर भाग गए।

हरावल में रहने का अधिकार किसका रहा यह विवाद का विषय नहीं हो सकता, क्योंकि किले में प्रवेश का प्रश्न स्वयं की प्रतिष्ठा न होकर मातृभूमि के लिये प्रथम बलिदान होने का स्थान हासिल करने का था और स्थान किसने हासिल किया यह भी विचार का विषय नहीं है, प्रश्न तो यह है कि राजूपतों ने मातृभूमि के लिये कैसे-कैसे बलिदान दिए, कैसे-कैसे रक्त बहाया, जिसका उदाहरण भारत के किसी भी क्षेत्र की किसी अन्य जाति के इतिहास में नहीं मिलता है। देश एवं मातृभूमि के लिये बलिदानों की होड़ में राजूपत हमेशा आगे रहा है। लेकिन राजपूत के बलिदान को सम्मान से कितना नवाजा गया है यह आप और हम सब अच्छी तरह जानते हैं। जैता चूण्डावत और बल्लू शक्तावत जैसे वीर योद्धाओं की वीरता, उनका साहस, उनका त्याग और बलिदान ही तो वर्तमान पीढ़ी की धरोहर है जो हमें प्रेरणा देती रहेगी।

विचार-सरिता

(एकपञ्चाशत् लहरी)

- विचारक

मोहनिन्द्रा में चल रहे इस जगतरूपी स्वप्न का अस्तित्व बस इतना ही है कि हम अज्ञान से आवृत हैं। हमें जगाने वाला कोई नहीं मिलता है तब तक इस जगतरूपी स्वप्न की सत्ता हमें सुखी और दुःखी करती रहेगी। हमारे स्वरूप में न सुख है न दुःख है वह तो आनंद स्वरूप हैं। उस आनन्द स्वरूप अनुभूति का रसास्वाद तो तब आता है जब हम होश में होते हैं। संयोग से कोई जगाने वाला आ भी जाता है तो हम उसकी आहट और आवाज को सुनना पसंद ही नहीं करते। हम नहीं चाहते कि कोई हमारे स्वप्न को तोड़े। एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन नींद में बड़बड़ाने लगा- ''अजी सुनती हो! मेरा चश्मा जल्दी लाकर दो। एक बहुत सुन्दर युवती दिखाई पड़ रही है। आकृति जरा धुंधली है। चश्मा लगाकर, उसे अच्छी तरह देखना चाहता हूँ। जरा जल्दी करो।'' नसरुद्दीन की पत्नी को भी बड़ी ईर्ष्या हुई कि मेरे से अति सुन्दर कोई युवती हो ही कैसे सकती है और यदि है भी तो वह मेरी सौतन कैसे हो सकती है। पत्नी ने मुल्ला को झकझोरा और मुल्ला के स्वप्न को तोड़ दिया। अब मुल्ला पत्नी पर गुस्से से फूट पड़ा। अभी-अभी तो वह आई थी। उससे मेरी आँखें चार हुई थी। मुलाकात होने को थी कि तुमने जगाकर बहुत बुरा किया।

ऐसी ही हालत हम सबकी है। हम अभी स्वप्न को सत्य समझकर इसके भोग-पदार्थों को भोगकर सुखी होना चाहते हैं। ऐसे में कोई सद्गुरु आकर हमें जगाने की चेष्टा करता है तो हम नाराज होते हैं। नहीं जगने के बहाने बनाते हैं। हम मन ही मन बड़बड़ाते हैं कि- अभी-अभी तो शादी हुई है। इस भरी जवानी में जरा जवानी का आनंद तो लेने दो। अभी जगने का समय ही कहाँ है। इस मध्य रात्रि में तो ऐसी आराम पूर्वक जीवन जीने की घड़ी आई है। अभी नींद कच्ची है। भोर होगी अर्थात् जीवन की वृद्धावस्था जब आएगी तब सोचेंगे कि जगना हितकर है या नहीं। अभी तो जीवन की मोहरात्रि में सपनों में खोये रहने में जो सुख है वह जगने में कहाँ?

फिर भी कोई जगाने का प्रयास करता है तो हम उस जगे हुए आदमी को पागल बताकर पत्थर मारते हैं। उसे गालियाँ देते हैं। उसे जहर पिलाकर मार ही देते हैं कि कहीं यह किसी की नींद में बाधा न पहुँचा दे। आदमी के जगने में उसकी पात्रता निर्भर करती है। वह सुपात्र है तो धीमी आवाज से जगाने पर भी वह जग जाएगा। यदि कुपात्र है तो कितना ही चीखो चिल्लाओ जाग्रति नहीं आएगी। शुकदेव जी द्वारा सुनाई गई भागवत अट्ठयासी हजार ऋषियों को नहीं जगा पाई परन्तु एक राजा परीक्षित के लिये वह शंखनाद बन गई। परीक्षित ने जागकर देखा कि-''अहो! मैं जिस सर्प-दंश से भयभीत था वह तो इस पंचभौतिक देह की अहंता के कारण था। मेरा अज्ञान ही था कि मैं इस काया को अपना-आप मान रहा था। अब शुकदेवजी की कृपा-दृष्टि व होश दिलाने वाली वाणी का ही प्रभाव है कि मैं यह जान पाया कि मुझ अमर-आत्मा को मृत्यु से कैसा भय। ऐसा एक नहीं हजारों तक्षक-नाग भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। क्योंकि अब मैं अपने आपको पा चुका हूँ।'' जगने की प्रतीक्षा में तैयार जनक व बुद्ध, महावीर, कबीर, रैदास, नानक व मीरा तथा मेवाड़ की भूरीबाई जैसे शिष्य लाखों में नहीं, करोड़ों में कोई एक होता है जिनको बस जगने का बहाना चाहिए।

साधना करने वाले सभी साधक अपने आपको साधक तो मानते हैं पर जगने की उत्कट इच्छा, प्रभु की प्यास व परमात्मानुभूति की तड़फन जिस किसी साधक में होगी वह जरा सी आहट से ही जग जाएगा, होश में आ जाएगा। शेष हम सभी मुल्ला नसरुद्दीन की तरह स्वप्न को सत्य करने में लगे हुए हैं। हम चाहते हैं कि यह जगत रूपी स्वप्न और इसके पदार्थ सत्य हो जाएँ और हम इन खिलौनों से खेलते ही रहें। शायद हम इसलिए जगने को तैयार नहीं हैं कि यदि जग गए, चेत हो गया तो अभी तक

(शेष पृष्ठ 34 पर)

समूह में जीने की कला

– *भँवरसिंह रेड़ी*

एकाकी जीवन जीने तथा सामूहिक जीवन जीने में जमीन आसमान का अन्तर है। क्षत्रिय युवक संघ द्वारा लगाये जाने वाले बालकों के शिविर में यदि किसी बालक का चेहरा उदासीन दिखाई दे तो समझ जाना चाहिए कि उसे सामूहिक जीवन जीने का अनुभव कम है या बिल्कुल नहीं है। वास्तव में सामूहिक जीवन जीने की एक कला है और यह कला समूह में अर्थात् शिविर जैसे माहोल में रहकर ही सीखी जा सकता है।

सामूहिक जीवन पारस्परिक अपेक्षाओं का जीवन है। समूह तथा भीड़ हमारे व्यवहार की कसौटी है। समूह में ही पहचान होती है कि कौन कैसा जीवन जीता है। सामूहिक जीवन में ही पता लग पाता है कि पारस्परिक अपेक्षाओं के क्षेत्र में कौन कितना खरा उतर पाता है। समूह कभी हमें प्रभावित करता है तथा कभी हम समूह को प्रभावित करते हैं। पारस्परिक प्रभावकता शक्ति सम्पन्नता पर निर्भर करती है। अब सवाल यह रह जाता है कि कौन कितना प्रभावक है। सफल सामूहिक जीवन जीने वाले व्यक्ति में नैतिक बल, सेवा भाव, सहयोगी मनोवृत्ति, उदारता, संवेदनशीलता, करुणा जैसे भाव होने नितान्त आवश्यक है। भीड़ हमारे जीवन की पहचान है। जैसे दर्पण में व्यक्ति स्वयं का चेहरा देखता है कि वह कितना कुरूप या सुन्दर है उसी प्रकार भीड़ के दर्पण में स्वयं के व्यवहारों को देखा जा सकता है।

समूह में कैसे जीयें इसका पहला उत्तर सरल सा यह है कि हम भीड़ में प्रसन्नता से जीयें ताकि हमारे आसपास बैठने वाले सुखानुभूति पा सकें। प्रसन्नता, स्वस्थता व परस्परता दोनों पक्षों के लिये आवश्यक है। उदास व निराश चेहरे के पास बैठने वाला भी अपने आपको खिन्न महसूस करने लग जाता है।

सामूहिक जीवन की दूसरी अपेक्षा है प्रत्येक कार्य में पहल करने की। जिस कार्य की वह दूसरों से अपेक्षा करता है उसकी पहल वह स्वयं करे। पहला कदम स्वयं उठाये ताकि अनेक कदम उसके पीछे उठ सकें। शिविरों में, पार्टियों में, समारोह में व शादी बरातों में नहाने में, चाय पीने में, हाथ साफ करने में, नाश्ते की प्लेट लेने में किसी भी अवसर पर स्वयं से पहले पास वालों को अवसर देने पर अपार आनन्द व प्रेम की अनुभूति होती है।

1. दायित्व बोध :– दायित्व स्वयं के व्यक्तित्व के विकास का साधन तो होता ही है, वह औरों के प्रति अपनी ओर से खुला अवदान भी है। दी गई जिम्मेवारी को प्रमाणिकता से निभाना सामूहिक जीवन की सफलता का प्रमुख आधार है। कुछ लोग तो जिम्मेवारी से डरते भागते फिरते हैं तथा कुछ स्वयं आगे बढकर बड़ी रुचि से जिम्मेवारी सम्भालते हैं। जो लोग दायित्व से डरकर भागते फिरते हैं वे सामाजिक व पारिवारिक सदस्यों के साथ न्याय नहीं करते हैं। दायित्व बोध ही क्षमताओं का सही मूल्यांकन करवाता है।

2. निष्कपट व्यवहार :– अंतर बुद्धि का महत्त्व अपने लिये अधिक महत्त्व का होता है लेकिन व्यवहार शुद्धि का महत्त्व औरों के लिये अधिक महत्त्व का होता है। हम हमारे जीवन में अनेकों बार अपने से छोटों व बड़ों के साथ रहते हैं परन्तु निष्कपटता की अपेक्षा परस्पर सदैव करते हैं। यदि कार्य एक दूसरे से छिपाकर समय पर न बताकर किया जाता है तो विश्वास को ठेस लगती है। सामूहिक जीवन में परस्पर विश्वास का अभाव पीड़ाकारक बन जाता है। अविश्वास में संदेह पनपते हैं, मन की दूरियाँ बढती हैं। आँखों पर आलोचना, उपेक्षा और अप्रियता का चश्मा चढ जाता है ऐसा रंगीन चश्मा चढ जाता है कि प्रतिद्वन्द्वी का अच्छा कार्य भी प्रश्नचिह्न बना रहता है। विश्वास टूटते ही सम्बन्धों की समरसता में फर्क आ जाता है।

3. रुचि भेद :– प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव अलग-अलग होता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग-अलग रुचि होती है। सामूहिक जीवन में पारस्परिक रुचियों

का टकरा जाना भी स्वाभाविक है। नाश्ते में कोई चाय पसन्द करता है, कोई दूध, कोई कम चीनी की चाय तो कोई बिल्कुल चीनी नहीं। शिविरों में चाय बिल्कुल दी ही नहीं जाती। किसी को ज्यादा मसालेदार सब्जी बिल्कुल सूट नहीं करती तो किसी को बहुत ही अच्छी लगती है। कई अकेले में भोजन करना पसन्द करते हैं तो किसी को अकेले में कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। ऐसे में जैसी भी सामूहिक व्यवस्था है उसे सहजता से स्वीकार कर लेनी चाहिए। अपनी रुचि को दबाना पड़े तो सानंद दबा लेना चाहिए। जहाँ काट, छाँट या परिवर्तन व संशोधन की आवश्यकता हो वहाँ लाभ का अनुपात देख लेना चाहिए। सामूहिक जीवन की सुन्दरता के लिये समूह दर्शन जरूरी है। मतभेद हो लेकिन मनभेद कभी नहीं होने चाहिए।

4. परस्पर शिकायतें नहीं होनी चाहिए :– परिवार के बड़े-बूढ़े लोगों का कर्त्तव्य होता है कि वे बालकों को प्रोत्साहित करें कि वे अभिभावकों के प्रति आदर का भाव रखें। ऐसी सावधानियाँ अपनी संस्कृति को बनाये रखती है। बालकों की सराहना करके तथा ऊँचे सम्बोधनों से सम्बोधित करके उन्हें परिवार और समाज का आदर्श बनाया जा सकता है। सामूहिक जीवन में बच्चे श्रमशील, कर्तव्यनिष्ठ एवं अनुशासन प्रिय बनकर ही परिवार की सामूहिक व्यवस्थाओं में योगदान दे सकते हैं। सबका विकास बराबर नहीं हो सकता इसलिए सभी के प्रति विकास की, कल्याण की कामना की जानी चाहिए। इस मंगल भावना के स्थान पर शिकायतों का स्थान नहीं होना चाहिए। जहाँ शिकायतों का अम्बार खड़ा कर दिया जाता है वहाँ शान्तिपूर्वक सह वास नहीं हो सकता है। जो चिंतनशील हैं उनको अपने परिवार व पास पड़ोस की विकास की योजनायें बनानी चाहिए ताकि पूरे परिवार समृद्ध, चिंतनशील व प्रगतिशील बन सकें। साथियों की गुणवत्ता व योग्यता का विकास हो सके। दुर्बलताओं से ऊपर उठकर व्यसनों से मुक्त होकर सभी के विकास की, मंगल की भावना करनी चाहिए।

5 धैर्य धारण रखें :– समूह में धैर्य धारण करना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि समूह में व्यक्तिगत रुचियों और विचारों व आस्थाओं का महत्त्व कम हो जाता है तथा सामूहिक विचारों, सामूहिक चिंतन तथा सामूहिक निर्णयों का महत्त्व अधिक बढ जाता है, ऐसी परिस्थिति में उतावलापन या झुंझलाहट से बचना चाहिए तथा धीरे-धीरे सहनशीलता की आदत डाल लेनी चाहिए।

6. हीनता के भावों को न पनपने देवें :– अपने से श्रेष्ठ वक्ता को देखकर या अपने से श्रेष्ठ पहनावा, खानपान या आर्थिक सम्पन्नता या किसी भी क्षेत्र में अपने से उत्तमता देखकर हीनता के भाव कभी नहीं लाने चाहिए बल्कि सामने वाले की श्रेष्ठता स्वयं में ही महसूस करनी चाहिए। समूह में रहने वाले या परिवार में या समाज में रहने वाले किसी भी सदस्य की प्रगति देखकर अपने में आनन्द का अनुभव करना सामूहिक जीवन की सफलता का बहुत बड़ा साधन है।

7. आत्मविश्वास बनाये रखें :– सामूहिक जीवन में आत्मविश्वास का होना अति आवश्यक है। स्वयं को औरों की तुलना पर न चढ़ायें। अपनी योग्यता, विशिष्टता और रुचि का स्वयं सम्मान करें। औरों से तुलना करने वाला सम्भव है उस तुला पर कभी न चढ सके। आत्मविश्वास खो देने वाला व्यक्ति कभी सफल नहीं हो सकता क्योंकि जिसको अपने आप पर ही विश्वास नहीं रह जाता उसका अस्तित्व ही क्या रह जाएगा।

8. भ्रम या संदेह न पनपने दें :– भीड़ में एक दूसरे के प्रति बहम या आशंकायें उत्पन्न होने लग जाती हैं कि क्या पता वह मेरे बारे में क्या सोचता होगा? हर समय शंकाशील बने रहने व भ्रम का भूत अपने हृदय में पालते रहने से जीवन की सरसता व निर्भयता समाप्त हो जाती है। कटुता का पौधा पनपने लग जाता है। कभी-कभी तो देखने में आता है कि वर्षों का जमा जमाया विश्वास इस भ्रम रूपी भूत से क्षण में ही समाप्त हो जाता है। फलत: उसका अपना मनोबल इतना गिर जाता है कि वह किसी सम्बन्ध को निभा नहीं पाता तथा सभी प्रकार के सम्बन्धों से टूट जाता है। जिसका बहमी स्वभाव है उसे चाहिए कि वह इतनी हिम्मत अवश्य जुटा ले कि वह पूछताछ करके अनावश्यक आशंकाओं के बादलों से स्वयं को उबार ले।

9. अति संवेदकता से बचना चाहिए :- अहंभाव वाले व्यक्तियों की कोई भूल सामने ला देने पर वे अपने अहं पर चोट समझकर कुचले सांप की तरह फुफकार उठते हैं। वे नहीं चाहते कि उनकी कोई भूल सामने लाई जाए।

उपसंहार :

समूह में, परिवार में या समाज में प्रमाणिक होना, निष्पक्ष होना आपके चरित्र की कसौटी है। वह मेरा क्या बिगाड़ सकता है ऐसे विचार उत्पन्न करके सामने वाले को और अधिक व्यग्र करने से बचना चाहिए। सामूहिक जीवन में भय और अभय का संतुलन होना चाहिए। जिनके शरीर दुर्बल हैं जिनमें ग्रन्थी व रसायनों की कमी है वे श्रेष्ठ व उदार जीवन नहीं जी सकते अत: जिस समूह में असामान्य मानसिकता के लोग रहते हों उनके साथ बुद्धि या तर्क का प्रयोग कम करके हृदय का प्रयोग ज्यादा करना चाहिए।

अधिकार, सत्ता और उन्माद की भाषा में बोलना परस्परता में बहुत बड़ी बाधा है। सामूहिक जीवन में तर्क व प्रतिक्रिया की भाषा का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए। प्रेम स्नेह की भाषा का प्रयोग करना चाहिए। समूह के किसी भी सदस्य पर आई विपत्ति देखकर उसका सामना करने में सब एक साथ जुट जायें उसी में एकात्मकता प्रकट होती है। समूह में सबका हित अपना हित होता है और अपना हित सबका हित होता है। वैयक्तिक स्तर पर जो ऊँचा जीवन जीता है वही व्यक्ति समष्टि के स्तर पर ऊँचाइयों को छू सकता है।

सामूहिक जीवन में मार्गदर्शन में भी कुछ कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। जैसे मार्गदर्शन के नाम पर छोटी-छोटी बातों पर डाट-डपट मारना प्रतिक्रिया के भाव जाग्रत कर देती है। उत्साह कमजोर पड़ जाता है। फलत: या तो डाट-डपट से सामने वाले में हीन भावना पैदा हो जाती है या फिर आवेश ही टूट जाता है। अत: मार्गदर्शक को डाट मारकर समझाने की बजाए सुझाव की भाषा से प्रेमपूर्वक समझाना चाहिए।

जो थोड़े से अपमान से ही विचलित हो जाते हैं उन्हें सम्भालने में प्राथमिकता देनी चाहिए। जो दूसरों पर विश्वास करने से डरते हैं उनमें आत्मविश्वास जगाना चाहिए।

अपने प्रति व अपनों के प्रति तो प्रमाणित सभी होते हैं लेकिन सबके प्रति प्रमाणिक होने वाले विरले ही होते हैं। यदि आप भी वैसे बनें तो जीवन में महान सफलता पा सकेंगे। किसी की गलती तत्काल नहीं बताकर पैर में लगे काँटे की तरह धीरे-धीरे बताने वाला प्रिय बना रह सकता है।

मनुष्य की आत्म तृप्ति जितनी प्रशंसा सुनकर होती है उतनी तृप्ति घी दूध पीकर भी नहीं होती है। इसीलिए कहा जाता है कि किसी के घर जाते समय वहाँ चारों ओर नजर पसार कर पहले यह देखो कि वहाँ प्रशंसा करने लायक क्या-क्या है? यदि कुछ भी नहीं दिखाई दे तो जाते-जाते धन्यवाद तो अवश्य देना चाहिए। समूह या परिवार के प्रत्येक सदस्य की कथा-व्यथा रुचि पूर्वक प्रेम से सुनते रहना चाहिए इससे आत्मीयता बढती है तथा यह एक व्यवहारिक गुण भी है।

सामूहिक जीवन जीना एक कला है स्वयं को सब के साथ जुड़ा मानते हुए भी अपने एकाकीपन का अनुभव करते रहना चाहिए। जिससे जिन बातों को सहा नहीं जा सके उनको नियति पर छोड़कर जीवन में समरसता कायम रखी जा सके।

जो समूह में रहना नहीं जानता वह परिवार में भी किरकिरी बनकर ही रह पाता है। अध्यात्म का एक शाश्वत नियम है कि हम जो दूसरों को देते हैं वह हमें निश्चित मिलता है। सम्मान देने वालों को सम्मान मिलता है और गाली देने वालों को गाली मिलती है। यदि आप अपना सम्मान चाहते हैं तो पहले औरों को सम्मान देने की तैयारी करनी होगी। व्यवहार जगत का यही सुन्दर नियम है कि पहले दो और फिर लो। ऊँचे व्यवहार के लिये जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नित्य नये लोगों से सम्पर्क बनाना पड़ता है चाहे वह सम्पर्क सदैव के लिये काम का बने या नहीं किन्तु हमारा व्यवहार दूसरों के प्रति स्वच्छ, सरल, कपटरहित, विनम्र व उदार होगा तो वे लोग सदा हमारे लिये हित चिंतन करते रहेंगे। अगर हमने उनके साथ कपटपूर्ण व्यवहार किया है तो वे निकट रहकर भी दूर भागने की चेष्टा करेंगे। अत: चलते पैर को दूसरे पैर का सहयोग चाहिए और हिलते हाथ को दूसरे हाथ का सहयोग चाहिए।

आलोचनाओं का महत्त्व

– दीपसिंह बिजेरी (नवातला)

दुनिया का यह कायदा है कि वह अपनी आँखों से अपनी कल्पना के अनुसार सब कुछ देखना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि दुनिया उसकी इच्छाओं के अनुसार चले और जब यह नहीं होता तो लोग आपस में एक-दूसरे के दोष निकालते हैं और टीका-टिप्पणी करते हैं।

परन्तु लोगों की यह आलोचना समझदारों के लिये बड़े काम की चीज होती है। वे इससे डरते नहीं, वरन् ऐसी आलोचनाओं का वे स्वागत करते हैं। भय तो उन्हें होता है जिनमें आत्मविश्वास नहीं होता। पर ऐसे लोग हममें से हैं कितने? अधिकतर लोग तो ऐसे होते हैं कि अगर कोई हमारी भलाई के लिये भी हमारी त्रुटियों की ओर संकेत करता है तो उसको हम बहुत ही बुरा मान जाते हैं। नतीजा यह होता है कि फिर लोग हमें हमारी भूलें बताना ही बन्द कर देते हैं और इस तरह अनजाने में हम अपना नुकसान करते रहते हैं।

इसलिए जब तक हममें सन्तुलित बुद्धि-विवेक, कार्य-निष्ठा और आत्मविश्वास नहीं होगा, हम लोगों की इस दोष ढूंढ़ने की आदत से हमेशा परेशान होते रहेंगे। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये आलोचनाओं का स्वागत करना और उससे पूरा लाभ उठाना बहुत ही आवश्यक है। हम इसे मानें या न मानें, आलोचनाएँ हमारे जीवन-संग्राम में होने वाले ऐसे आक्रमण हैं जो हमारी शक्ति को बढ़ाते रहते हैं।

एक बुद्धिमान ने अपने कमरे की दीवार पर लिख रखा था : 'आलोचनाओं से बचने के लिये बोलो मत, कुछ करो मत और कुछ सोचो मत।'

बात भी सच है, आदमी जितना ऊँचे चढ़ता है, जितना अधिक काम करता है उतनी ही मौलिकता उसमें आ जाती है और तब लोगों की निगाहों से उसका बचना असम्भव हो जाता है। फिर क्यों न पहले से ही ऐसी आशा रखें और अपने को इसके लिये तैयार कर लें! लेकिन हाँ, बिना वजह आलोचनाओं को न्योता न दें। आलोचनाओं से हम इसलिए डरते और घबराते हैं, क्योंकि हम सोचते हैं कि अगर हम ठीक ढ़ंग से काम करें तो लोग दोष ही क्यों निकालें। पर क्या आप यह भूल गए कि दुनिया में एक व्यक्ति हर व्यक्ति को खुश नहीं रख सकता! अभी तक संसार में ऐसी कोई विधि नहीं निकल सकी है जिससे हर किसी को पूरा-पूरा संतुष्ट दिया जा सके। गांधीजी की दुनिया की अधिकतर जनता प्रशंसा करती थी और उनके दीर्घायु होने की कामना करती थी; पर कुछ लोग ऐसे भी थे जो उनके कामों को गलत समझते थे, इसलिए उन्हीं में से एक आदमी ने उन पर गोली चला दी और उनका नश्वर शरीर छूट गया।

शायद बचपन से आपने स्कूल में एक कहानी पढ़ी होगी : कोई पिता-पुत्र यात्रा के लिये निकले। साथ एक गधा भी था। गधे पर कोई बोझ न था। रास्ते में लोगों ने देखा और कहा,-'कैसे बेवकूफ हैं ये, जो जानवर के खाली होते हुए पैदल चल रहे हैं।' पिता ने पुत्र को गधे पर बिठा दिया। अभी थोड़ी दूर भी न गए होंगे कि एक दूसरे सज्जन मिल गए, जिन्होंने पुत्रको कोसा कि-'बेचारा बूढ़ाबाप तो पैदल चल रहा है और आप गधे पर चढ़े जा रहे हैं।' पुत्र गधे पर से उतर गया और अपने पिता को उस पर बिठाया। फिर वही हालत हुई। लोगों ने पिता की भर्त्सना करनी शुरू कर दी, क्योंकि छोटा लड़का पैदल चल रहा था। बेचारों की तरह तरह से मौत। पिता ने पुत्र को भी गधे पर बिठा लिया। और तब लोगों ने कहा-'देखो कैसे पापी हैं, जो बेचारे बेजुबान गधे पर दोनों बैठकर उसे मारे डाल रहे हैं।'

आप जानते हैं इसका नतीजा क्या हुआ? उन बेवकूफों ने गधे को रस्सी से बांधकर एक डंडे के सहारे लटकाया और कंधे पर ले चले। लोगों ने फिर तो और भी दुत्कारा। हताश होकर उन्होंने गधे को पुल पर ला पटका। और उस गधे ने ऐसी दुलत्ती झाड़ी कि पिता-पुत्र दोनों पुल के नीचे गिरे, और नीचे बहती नदी के पानी में डूबकर मर गए।

आप कितना भी अच्छे से अच्छा काम क्यों न करें, लोग गलती तो निकालेंगे ही। इससे बचना तो नितांत असम्भव है। फिर आलोचनाओं से डरना ही क्यों? निर्भय होने के बाद आप में यह आत्मिक शक्ति होनी चाहिए जिससे आप इस आलोचना का निर्णय कर सकें और अपने निर्णय को अपने जीवन में उतार भी सकें।

एक ऐसे ही निर्भय और गंभीर व्यक्ति की बात सुनिए : एक बड़े ही उतावले सज्जन एक दिन बम्बई हवाई जहाज में चढ़कर एक गंभीर राजनैतिक नेता के पास आए और भेंट करने के लिये प्रार्थना की। कलकत्ते के एक समाचार पत्र ने उनके संबंध में एक लेख प्रकाशित किया था जिसमें उनकी और उनके कार्यों की तीव्र आलोचना की गई थी। इन उतावले सज्जन ने उनको वह पत्र दिखाकर कहा–''क्या मैं इसके सम्पादक से अपने पत्र में आपसे क्षमा माँगने के लिये कहूँ? और न मांगे तो उसके खिलाफ मानहानि का मुकदमा क्यों न चलाऊँ?'' सुन लेने पर थोड़ी देर तक चुप रहकर उक्त नेता ने गंभीरतापूर्वक कहा–''भाई! कुछ करने के पहले जरा सोचिए। मेरी समझ में आप जो करना चाहते हैं उसकी जरूरत नहीं है। उस अखबार के मंगाने वालों में से आधों ने तो उस लेख को देखा भी न होगा, उनमें से भी आधे लोगों ने पढ़ा भी होगा तो समझा न होगा। और जिसने समझा उस पर विश्वास न किया होगा। और उनमें से भी आधे व्यक्तियों ने, जिन्होंने उस पर विश्वास किया, उनका तो कोई महत्त्व ही नहीं।''

कितनी बुद्धिमानी से उन्होंने इन उतावले सज्जन को एक बड़ी भूल करने से बचा लिया। आलोचना हमेशा सच तो होती नहीं। यदि सभी आलोचनाओं को सच मानकर उन्हीं के इशारे पर आप चलने लगें, तो जान लीजिए कि घड़ी के पेंडुलम की तरह आप ऊपर–नीचे होते रहेंगे।

अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय लिंकन ने अपने विरोधियों के विरोध के उत्तर में कहा,–''अगर मैं अपने प्रति लिखी गई सभी आलोचनाओं और लगाए गए इलजामों को पढ़ूं तो इस कार्यालय में कोई दूसरा काम हो ही न सकेगा, सिवा इसके कि मैं उनके उत्तर ही देता रहूँ। काम को जितनी अच्छी तरह मैं कर सकता हूँ, करता हूँ। और इसी तरह मैं शुरू से आखिर तक करता रहूंगा। यदि अंत में बुरा हुआ तो मैं कितनी भी सफाई देता फिरूँ कि नहीं, मैं सही था, वह व्यर्थ ही होगा। और यदि अन्त में भला हुआ तो आज जो मेरे बारे में कहा जा रहा है, उसकी कोई कीमत ही न रहेगी।''

पृष्ठ 22 का शेष

जीवन्मुक्ति की प्राप्ति

सोपान मात्र है। विशेष अन्तर्दृष्टि प्रदायक प्रज्ञाशक्ति की सहायता से गुणों का अतिक्रमण किए बिना ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। आध्यात्मिक जीवन नैतिक जीवन से कुछ अधिक है। नैतिक आचरण निश्चित रूप से अपरिहार्य है, लेकिन आध्यात्मिक जागरण भी होना चाहिए। यह परमात्मसत्ता के निरंतर जप और ध्यान से होता है, जो अन्ततोगत्वा साधक को स्वयं तथा दूसरों में परमात्मा की सत्ता का साक्षात्कार करने में समर्थ करता है। हमें तंग करने वाली विश्वजनीन शक्तियों के जाल में फँसे रहने तक जीव आध्यात्मिक स्वाधीनता कभी प्राप्त नहीं कर सकता; लेकिन जब जीव अन्ततः गुणों का अतिक्रमण करता है, तब वह जन्म और मृत्यु से, दुःख और जरा से छुटकारा पाकर अमर हो जाता है।

हमारा मानव व्यक्तित्व वैचित्र्यपूर्ण एवं जटिल है। विश्वजनीन अविद्या या माया के उपादान त्रिगुणों के नाम से पुकारी जाने वाली विश्वजनीन शक्तियाँ अहंकार वासनाओं सहित मन तथा बाह्यजगत् और देह से आसक्ति के स्वभाव युक्त इन्द्रियों को पैदा करती हैं। यह जटिल प्रकृति हमारे वास्तविक स्वरूप, उच्चतर आत्मा को आवृत कर देती है। हमें अपने बाहरी व्यक्तित्व के बन्धन से तथा हमारे वातावरण की सीमाओं से मुक्त होना सीख लेना चाहिए। निषेधात्मक भाषा में चरम मुक्ति का अर्थ समस्त अनर्थों की मूलकारण अविद्या से मुक्ति है। सकारात्मक भाषा में उसका अर्थ ब्रह्म, ईश्वर, अल्लाह अथवा ताओ कहलाने वाले चरम सत्य का साक्षात्कार है। सिद्ध महापुरुष इसी वास्तविक मुक्ति को प्राप्त करते हैं। मोक्ष या मुक्ति उस ज्ञानालोक द्वारा प्राप्त होती है जो नैतिक और आध्यात्मिक रूपान्तरण कर डालता है। ***(क्रमशः)***

अपनी बात

हमारे यहाँ दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करने की परम्परा है। दुनिया में कहीं भी, किसी भी देश में दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करने की प्रथा नहीं है। यह आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे एक बड़ी भारी परम्परा है, एक बड़ा बोध है। ये दो हाथ मनुष्य के भीतर जो द्वंद्व है, उसके प्रतीक हैं। और दोनों हाथ जोड़कर जब तक निर्द्वंद्व अवस्था न हो जाए, जब तक अद्वैत की अवस्था न हो, तब तक अरजी उस तक, परमात्मा तक पहुँचेगी नहीं। द्वंद्व से उठे सब स्वर संसार में खो जाते हैं। द्वैत से उठी सब चिट्ठियाँ यहीं संसार में एक-दूसरे के पास पहुँच जाती है। हमारी चिट्ठी परमात्मा तक तभी पहुँचे, जब अद्वैत से उठे; जब हमारे दोनों हाथ जुड़ जाएँ; जब बायां और दायां एक हो जाए; जब बुद्धि और हृदय एक हो जाएँ; जब हमारे भीतर सुख और दुख एक हो जाएँ; यश-अपयश एक हो जाएँ, सफलता-असफलता एक हो जाएँ, जब हमारे सब विरोध संयुक्त हो जाएँ, हमारे भीतर का एक स्वर उठे। जिस क्षण हमारे भीतर निर्द्वंद्व भावदशा होती है, उसी क्षण हमारी पाती परमात्मा तक पहुँच पाती है, उससे पहले नहीं।

कभी-कभी क्षण भर को दो हाथ जुड़ते हैं और जब दो हाथ जुड़ जाते हैं, तभी आशीष की वर्षा हो जाती है। भक्त के ही नहीं कभी-कभी हमारे जीवन में भी दो हाथ जुड़ जाते हैं। किसी सुबह अकारण, हमें समझ में भी नहीं आता कि क्यों! शायद रात में नींद अच्छी आई, शायद शरीर स्वस्थ है। सुबह उठे हैं, सूरज उगा है, पक्षी स्तुतियाँ कर रहे हैं। परमात्मा की, मंदिर की घंटी बज रही है और अचानक हमारे दोनों हाथ जुड़ जाते हैं। एक क्षण को हमारे भीतर निर्द्वंद्व का भाव उठा। हम उस भाव को पकड़ भी नहीं पाएंगे और वह खो जाएगा। लेकिन उस एक क्षण को हमारे भीतर अमृत की धार बह जाएगी। ऐसा सबके जीवन में होता है। आकस्मिक होता है, इसलिए हम उसके मालिक नहीं हैं। क्योंकि आकस्मिक होता है इतनी जल्दी होता है और इतनी जल्दी ही खो जाता है। हम पकड़ भी नहीं पाते, हमें भरोसा नहीं होता, तो हम सोचते हैं-रही होगी कोई कल्पना।

दोनों हाथ हैं; मुश्किल से जुड़ते हैं। लेकिन जोड़ने की सारी कला ही ध्यान, प्रार्थना, पूजा, अर्चना या जो भी नाम दें, दोनों हाथ जोड़ने की कला का नाम है। ऐसी घड़ी पैदा करनी है, जहाँ हमारे दोनों हाथ सहजता से जुड़ जाएँ, ऐसी भावदशा, ऐसा बोध जगाना है। शिविरों में प्रातः ध्वज-प्रार्थना करते हैं, निर्द्वंद्वता का भाव आ जाता है। सहगीतों पर हम झूम उठते हैं तो निर्द्वंद्वता का ही भाव रहता है। ऐसी भावदशा प्राप्त हो, वहाँ चूकें नहीं।

कोई अवसर न गंवाएँ। सुबह सूरज उगता हो, झुक जाएँ नमस्कार में। इसीलिए ही हम सूर्य-नमस्कार करते हैं। क्योंकि जब सूरज उगता है, सारे जगत में नया पदार्पण हो रहा है प्रकाश का। इस घड़ी को चूकें नहीं। कौन जानें हाथ जुड़ जाएँ, इस लहर पर सवार हो जाएँ। सूरज के रथ पर सवार हो जाएँ। रात बीती है, अंधेरा टूटा है, तन्द्रा टूटी है, वृक्ष जागे हैं, पक्षी जागे हैं, पशु जागे हैं, लोग जागे हैं, जागरण की घड़ी है। कौन जाने इस जागरण की घड़ी में, इस प्रवाह में हम भी बह जाएँ और क्षण भर को जागरण लग जाए, क्षण भर को जागरण बन जाए, जागरण सध जाए! तो चूकें नहीं।

हम जो सूर्य-नमस्कार करते हैं, वह नमस्कार अर्थ पूर्ण है। वह सूरज को ही नहीं है नमस्कार। वह सिर्फ एक घड़ी का उपयोग कर लेना है, ताकि दोनों हाथ जुड़ जाएँ। और अगर हम भाव से झुके हैं, बरसती हुई सूरज की रोशनी है, जो भाव से झुकेंगे, एक होकर झुकेंगे, तो सूरज खो जाएगा। सूरज की जगह परमात्मा की रोशनी बरसने लगेगी।

रात में चाँद निकला है, जोड़ लें हाथ, झुक जाएँ पृथ्वी पर। गुलाब का फूल खिला है, अवसर चूकें नहीं। बैठ जाएँ पास में, कौन जाने यह गुलाब की ताजगी, यह गुलाब जो गुलाल फेंक रहा है, कृष्ण ने ही फेंकी हो। है तो सब गुलाल उसी की। अब बैठकर इन्तजार थोड़ा ही करना है कि वह पिचकारी लेकर आएगा।

वह तो रोज आ रहा है। उसके सिवाय कुछ आने को है भी नहीं। वही आता है इन वृक्षों में झलकती हुई सूरज की किरणों को देखें। इन वृक्षों में जो किरणों ने जाल फैलाया है, उसे देखें। इन वृक्षों के बीच जो धूप-छाया का रास हो रहा है, उसे देखें। यह उसी का रास है। इन वृक्षों में जो पक्षी कलरव कर रहे हैं, यह वही तो हैं। हम यह न सोचें कि वह बांसुरी बजाएगा, तब हम सुनेंगे। यह उसी की बांसुरी है। कभी पक्षियों से गाता है, कभी बांसों से भी गाता है। यह सारा अस्तित्व उसका है। यह सब गुलाल उसका है। चन्दन की सुगन्ध में उसी की सुगन्ध है। वह फेंक रहा है, लुटा रहा है। मगर हमारे दोनों हाथ नहीं जुड़े हैं, सो चूक जाते हैं। दोनों हाथ जोड़ें अर्थात् निर्द्वंद्व की भावदशा में आएँ और उस भावदशा को अंजुली में भर लें। कोई अवसर न चूकें। शिविरों में सुख-दुख, यश-अपयश, सफलता-असफलता सभी कुछ तो संयुक्त हो जाते हैं। बुद्धि हृदय की चेरी हो जाती है। अवसर का सदुपयोग करने से न चूकें।

पृष्ठ 27 का शेष

विचार-सरिता

जो मोह-निद्रा, के कारण जगतरूपी स्वप्न में जो कुछ पाया है वह सब बेकार हो जाएगा। पाया-नहीं पाया सब व्यर्थ चला जाएगा। इसी भय के कारण हम संभवतया जागने में आनाकानी करते हैं।

हमें पता है कि गुरु हमें प्रकृति से परे अपने अहोभाव में लाना चाहते हैं। पर हम हैं कि प्रकृति की जड़ता को छोड़ना ही नहीं चाहते। अविद्या के परिणामस्वरूप असत् में ही हमारी सत्‌बुद्धि है। अनित्य में नित्य बुद्धि है। अशुचि में शुचि बुद्धि चल रही है। तथा अनात्म में आत्म-बुद्धि हो रही है। इस चार प्रकार की अविद्या की जड़ता में हम इतने जकड़ चुके हैं कि दु:ख विषयों में सुख बुद्धि को रही है। इससे बड़ी मूर्खता साधक की और क्या होगी कि वह आनंद स्वरूप होते हुए भी अपने आनंद से अनभिज्ञ है और विषयों में आनंद ढूंढ रहा है। कस्तूरी, मृग की नाभि में है। वह जब परिपक्व अवस्था में होती है तो उसकी परमल (खुशबू) इतनी लुभावनी होती है कि उस परमल की खोज में वह मृग भागा फिर रहा है। वह सोचता है यह परमल किसी घास विशेष की है अत: वह जंगल-जंगल भागा फिरता है। ऐसी ही स्थिति हम साधकों की है कि हम भी अपने आत्मानंद से बेखबर होने के कारण विषयानंद को ही अपना लक्ष्य मानकर जीवन को व्यर्थ गंवा रहे हैं।

हमारी चेतनता में कोई कमी नहीं है वह तो उस स्रोत की तरह है जो निरंतर तरंगित है। वह झरना तभी प्रगट होता है जब उस पर आए हुए पत्थरों को कोई हटा दे। किसी झरने पर थोड़े पत्थर होते हैं तो वह पाँच-पच्चीस पत्थर हटाते ही फूट पड़ता है। कुछ झरनों पर चट्टानें आ चुकी हैं उन्हें हटाने में लम्बा समय लग सकता है। झरना तो सागर की ओर दौड़ने को तत्पर है पर राह में आए हुए पत्थरों के कारण विलम्ब हो रहा है।

हमारी चेतन सत्ता सदैव ज्यों कि त्यों विद्यमान है पर हमारी अज्ञानजनित मान्यताओं के कारण विलम्ब हो रहा है। कुल की मर्यादाएँ, कुल के धर्म, कुल का अभिमान, वर्ण और आश्रम के अभिमान के पत्थर इतने भारी-भरकम बन चुके हैं कि उन्हें हटाने में हम असहाय अनुभव कर रहे हैं। बस सन्तजन कहते हैं कि तत्काल वैराग्य की तीक्ष्ण धार वाली तलवार से काट डालो इन बन्धनों को। तुम निरबन्धन-आत्मा पर यह मिथ्या बंधन का भाव ही तुम्हें दीन-हीन बना रहा है। तोड़ो इन निर्मूल जंजीरों को। समस्त संसार के सम्राट हो तुम। इसलिए विषयों की माँग से अपने आपको मंगता मत बनाओ। बस अपने आत्म-पद पर आसीन होकर देखो कि तुम्हारा मन जो इतने दिन तक तुम्हें गुलामी की जंजीरों से जकड़े रखता था आज वह लाचार और जिसके तुम दास बने हुए थे वही आज दास बनकर तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा में हाथ बाँधे खड़ा है। ''अहं-ब्रह्मास्मि'' की गर्जना सुनकर समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ भेड़ों की तरह भाग खड़ी हुई हैं और तुम एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर चुके हो अपने देह रूपी नगरी पर। बस आवश्यकता है एक बार जगने की।

❐

हुकुम सिंह कुम्पावत (आकडावास, पाली)

शिव ज्वैलर्स

विश्वसनीयता में एक मात्र नाम

22/22 कैरेट हॉलमार्क आभूषण, न्यूनतम बनवाई दर पर

शुद्ध राजपूती आभूषण

(बाजूबन्द, पूछी, बंगडी, नथ आदि)

तैयार उपलब्ध एवं ऑर्डर से भी तैयार किये जाते है।

विशेषज्ञ : सोने व चाँदी की पायजेब, अंगूठी, डायमण्ड, कुन्दन के आभूषण, बैंकॉक आईटम्स आदि

जी-1, सफायर कॉम्पलेक्स, जैन मेडिकल के सामने,
खातीपुरा रोड़, झोटवाड़ा, जयपुर
मो. 7073186603, 8890942548

Rajwara Royal Camp & Events

Regional Melas, Forest Camping, Royal Wedding and one of the highlights of your experience in India

Yogendra Singh Nathawat (Benyakavas) (M) 9785750572, 8619454944

Off. : F-21, Govindam Tower, Kardhani Scheme, Govindpura, Kalwar Road, Jhotwara, Jaipur

E-mail : rajwararoyalcamp@gmail.com | Website : www.rajwararoyalcamp.com

जनवरी, सन् 2020
वर्ष : 57, अंक : 01

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्..

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह